प्रकाशक
रघुनन्दन प्रसाद विनीत
मन्त्री सत्याश्रम
वर्धा



मुद्रक
सदाशिव गोसावी
मैनेजर सत्येश्वर प्रि. प्रेस
सत्याश्रम वर्धा

प्रास्ताविक

इस दुनिया को नई दुनिया बनाने के लिये, या इसी भूतलपर स्वर्ग वैकुण्ठ जन्नत बहिश्त उतारने के लिये धार्मिक सामाजिक राजनैतिक आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में जिन जिन परिवर्तनों की जरूरत है उन सब के विस्तृत विवेचन के लिये विशाल सत्यामृत ग्रंथ बनाया था। सत्यामृत के बाद यह विचार आया कि इन सब बातों का सूत्ररूप में निर्देश किया जाय, इसके लिये चौबीस जीवन-सूत्र बनाकर उनपर एक पुस्तक लिखी जो जीवनसूत्र के नाम से प्रकाशित हुई। पर ये दोनों गद्य ग्रन्थ थे इसलिये यह कमी खटकती ही रही कि सत्यामृत के सार के रूपमें या जीवन सूत्र के भाष्य के रूपमें कोई ऐसा पद्य ग्रंथ होना चाहिये जिसके आधार से प्रवचन किये जासके, जिसका नियमित रूपमें सामूहिक या अकेले ही पाठ किया जासके, जो संगीत के साथ गाया जाकर लोगों के मनोरंजन के साथ ज्ञान बढ़ाने में भी सहायक हो। इसीलिये इस सत्येश्वर गीता का निर्माण हुआ है।

यद्यपि यह गीता सत्यामृत का सार ही कही जासकती है फिर भी इसके विषय विवेचन का ढंग इतना स्वतंत्र है कि सत्यामृत पढ़ चुकने वाले को भी इसमें मौलिकता दिखाई देगी, और कहीं कहीं तो विषय का विवेचन बढ़ भी गया है। फिर पद्य और गीत रचना होने के कारण भी इसकी मौलिकता बढ़गई है।

ऐसे धर्मग्रंथों में काव्य ढूंढना दवाई में सुस्वाद ढूंढने के समान ही है, फिर भी कहीं कहीं गीतों में थोड़ा बहुत रस भी आगया है।

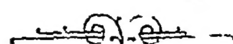
यद्यपि इसके बहुत पहिले, सत्यामृत के भी पहिले, मैं कृष्णगीता लिख चुका हूँ, पर सत्येश्वर गीता विषय विवेचन की दृष्टि से उसकी अपेक्षा पूर्णता की ओर अधिक बढ़ी है, कृष्ण गीता की अपेक्षा अधिक विषयों का समावेश इस गीता में हुआ है, कलेवर भी इसका उसे से अधिक है। गीतों की संख्या भी तिगुनी है।

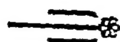
अगर इसका नियमित वाचन किया जाय तो काफी ज्ञान और शान्ति की प्राप्ति होसकती है।

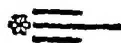
सत्याश्रम वर्धा
११-९-४६

सत्यभक्त

विषय-सूची







सत्यसमाज के संस्थापक

स्वामी सत्यभक्त

सत्येश्वर गीता

१—मंगलाध्याय

मेरी भाषा तेरे विचार।
मैं तो निमित्त भर हूँ तू ही देरहा जगत को धर्मसार।
मेरी भाषा तेरे विचार ॥ १ ॥

यह बुद्धि तभी सद्बुद्धि बनी।
जब सत्यभक्ति से हुई सनी ॥
सत्येश्वर तेरे चरणों पर जब चढ़ादिया सब शास्त्रभार।
मेरी भाषा तेरे विचार ॥ २ ॥

तूने मुझको आदेश दिया।
मैंने सिर आंखों उसे लिया ॥
सत्येश्वर गीता सुना रहा सन्देश वही तेरा अपार।
मेरी भाषा तेरे विचार ॥ ३ ॥

तेरे नाम

सत्येश्वर अल्लाह विधि रब रहीम रहमान।
ब्रह्मा विष्णु महेश हर अहुरमज्द भगवान ॥ ४ ॥
गॉड यहोवा हरि खुदा परमसिद्ध करतार।
महाबोधि ओंकार विभु परब्रह्म भवपार ॥ ५ ॥

महादेव शंकर गुणी गुणसागर गुणधाम ।
चिदानन्द साहब धनी निर्गुण गुणविश्राम ॥ ६ ॥

परमात्मा परमेश प्रभु परमसच्चिदानन्द ।
लीलामय सुखधाम भव महाकाल अद्वंद ॥ ७ ॥

नारायण मायाधनी मायापति निर्माय ।
लीलासागर पुण्यमय अगणितकाय अकाय ॥ ८ ॥

तथ्यसार कल्याणमय शम्भु स्वयम्भू ईश ।
जगन्नियन्ता जगत्पति सर्वेश्वर जगदीश ॥ ९ ॥

मुक्तीश्वर वैकुण्ठपति देवदेव देवेश ।
परमदेव अमरत्वमय सुखसागर अक्लेश ॥ १० ॥

चेतनघन चैतन्यमय शिव चैतन्याधीश ।
परमशक्त विज्ञानघन कलानाथ लक्ष्मीश ॥ ११ ॥

परमसूर्य चैतन्यरवि चिन्मय परमप्रकाश ।
परमज्योति सज्ज्ञानमय ज्योतिर्लिंग अनाश ॥ १२ ॥

विश्वेश्वर सर्वात्ममय गुणमय जगदाधार ।
परमनियन्ता धर्ममय कृपागार कृपसार ॥ १३ ॥

परमध्येय प्रलयाधिपति जगत्पिता न्यायेश ।
सत्यभक्तवत्सल वरद सातामय ज्ञानेश ॥ १४ ॥

तेरे नाम असंख्य हैं सब ही हैं अभिराम ।
शब्द शब्दमें रम रहे तेरे सुन्दर नाम ॥ १५ ॥

भक्त किसी भी नाम से मनसे करे पुकार ।
बोल उठेगा तू तभी तेरे नाम हजार ॥ १६ ॥

भाषा कोई भी रहे ध्वनि हो याकि निशान ।
भक्ति हृदयमें हो अगर सब तेरा गुणगान ॥ १७ ॥

तेरा युगल

यद्यपि है अद्वैत पर तेरे अमित प्रकार।
तेरी लीला से बना यह सारा संसार ॥ १८ ॥
इस लीला के मूल हैं नरनारी दो अंग।
होती तब ही सृष्टि है जब हों दोनों संग ॥ १९ ॥
नरनारीमय विश्व है नरनारीमय कार्य।
उपादानके संगमें है निमित्त अनिवार्य ॥ २० ॥
सत्य अहिंसा, शिव शिवा, वीतरागता ज्ञान।
चिदानन्द कृतिज्ञानमय युगलरूप भगवान ॥ २१ ॥

रूप

जितने जगमें देव हैं हैं जिनका गुणगान।
वे सब तेरे अंश हैं या हैं दाससमान ॥ २२ ॥
जितने सद्गुण जगतमें जिनसे जगकल्याण।
उतने ही गुणदेव हैं तेरे रूप समान ॥ २३ ॥

गीत

सकल गुण हैं तेरे ही अंग।
बल विवेक विज्ञान कला रस धन सौन्दर्य अनंग ॥
सकल गुण हैं तेरे ही अंग ॥ २४ ॥
काम मोक्ष जीवार्थमूल ये धर्म अर्थ के संग।
न्याय भक्ति करुणा वत्सलता जीवन के सब रंग ॥
सकल गुण हैं तेरे ही अंग ॥ २५ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश बने ये उत्पाद-स्थिति-भंग।
सारे गुण गुणदेव कहाये अलंकार का ढंग ॥
सकल गुण हैं तेरे ही अंग ॥ २६ ॥

है अनंत आकाश ये है न कालका अंत ।
सकलकाल सब देशमें तेरे रूप अनन्त ॥ २७ ॥
जितने तेरे रूप हैं ज्ञानी करते शोध ।
दिखती उनमें भिन्नता पर उनमें न विरोध ॥ २८ ॥
मिली समन्वयवृत्ति जब देखा तेरा रूप ।
कोटि कोटि ब्रह्माडमय तेरा रूप अनूप ॥ २९ ॥

तेरा कार्य

सब पदार्थ सद्रूप हैं छोड़ न सकें स्वभाव ।
तेरे भीतर रमरहे सारे भाव अभाव ॥ ३० ॥
पुण्यपाप निष्फल न हो सफल रहें सब कर्म ।
नियमनियन्ता विश्वका तेरा निश्चल धर्म ॥ ३१ ॥
पथ्यापथ्य विवेकमय दिव्य दृष्टिका दान ।
अन्तर सुखका भाव है तेरा कार्य प्रधान ॥ ३२ ॥

तेरी अगम्यता

बुद्ध मसीहा जिन नबी पैगम्बर अवतार ।
तीर्थंकर से भक्त भी थके न पाया पार ॥ ३३ ॥
मुनि महर्षि सर्वज्ञ कवि वैज्ञानिक अर्हन्त ।
सत्यभक्त सब थक गये मिला न तेरा अन्त ॥ ३४ ॥
सत्यभक्त बस पासके अगम्यता का ज्ञान ।
अगम्यता के भानसे छूट गया अभिमान ॥ ३५ ॥

तेरी गम्यता

यद्यपि अगम अपार तू पर घट घट में बास ।
उस घटमें तू प्रगट है जो घट तेरा दास ॥ ३६ ॥
यह आकाश अनंत है और प्रकाश अपार ।
पर छोटीसी आँखमें प्रगट हुआ संसार ॥ ३७ ॥

कहलाता सर्वज्ञ वह जो हो तेरा भृत्य ।
थोड़े से भी अंश से जग होता कृतकृत्य ॥ ३८ ॥
मिल न सका तो क्या हुआ अगर वरुणका वास ।
गगरी का भी शुद्ध जल बुझा सकेगा प्यास ॥ ३९ ॥
पूर्ण रूप तेरा अगम अंश रूप पर ज्ञेय ।
अंशरूप से ही हुआ पूर्ण रूप अनुमेय ॥ ४० ॥

तेरा स्थान

बसता है तू किस जगह यह कह सकता कौन ।
कहा न तेरा वास है इसका उत्तर मौन ॥ ४१ ॥
जितने जगमें तीर्थ हैं जितने धर्मस्थान ।
तेरे पढ़ने के लिये वे सब ग्रंथ समान ॥ ४२ ॥
जेरुसलम मक्का गया जगन्नाथ गिरनार ।
सारनाथ सम्मेदगिरि उज्जयिनी ओंकार ॥ ४३ ॥
शत्रुंजय व्रज द्वारका काशी सेतु प्रयाग ।
ग्राम नगर उपवन नदी सागर झील तडाग ॥ ४४ ॥
सब तेरे ही तीर्थ हैं सब तेरे ही द्वार ।
सत्यभक्त हैं देखते तुझको आंख पसार ॥ ४५ ॥
मन्दिर मसजिद चर्च में है तेरा गुणगान ।
भेद न इनमें है तनिक हैं सब एक समान ॥ ४६ ॥
संगे असवद मूर्तियाँ पुस्तक ध्वजा निशान ।
यादगाह तेरे सभी हैं सब एक समान ॥ ४७ ॥
अवलम्बन कोई रहे जिसका हृदय उदार ।
उसे किसी भी राह से मिलता तेरा द्वार ॥ ४८ ॥

तेरी पूजा

पूजा अर्चा प्रार्थना जप नमाज तप ध्यान ।
सबमें तेरी याद है सब हैं एक समान ॥ ४९ ॥

तेरी भाषा

सब भाषाओं में भरी तन में प्राण समान ।
तेरी भाषा अगम है फिर भी सुगम महान ॥ ५० ॥
जिसका मन निष्पक्ष है है विवेकका धाम ।
उनपर ही है भेजता तू अपना पैगाम ॥ ५१ ॥
शब्दों का छल छोड़कर अपना हृदय टटोल ।
जो मनको मनसे पढ़े समझे तेरा बोल ॥ ५२ ॥
संस्कृत लेटिन फारसी अरबी प्राकृत बोल ।
चीनी रूसी फ्रेंच या जापानी मंगोल ॥ ५३ ॥
जर्मन इंग्लिश मरहटी हिन्दी तुर्की बंग ।
कनड़ी तामिल उत्कली मलयानिल तेलंग ॥ ५४ ॥
असमी ब्राह्मी गुर्जरी पश्तो स्पेनी और ।
इत्यादिक सब बोलियाँ झुकतीं तेरी ओर ॥ ५५ ॥
मनके मनसे मेल में हैं सब सेतु समान ।
मन से मन मिलते तभी जब हो तेरा ध्यान ॥ ५६ ॥
जिनके मन में प्रेम है जिनको तेरा ध्यान ।
उनके मन में है नहीं भाषा का अभिमान ॥ ५७ ॥
भाषारूढि न मानते रक्खें सदा विवेक ।
दुनियाभरकी चाहते मानवभाषा एक ॥ ५८ ॥
भाषाओं के मेलसे सबका खींचे सार ।
सरल और विभ्रमरहित हो भाषाविस्तार ॥ ५९ ॥
जो भाषानिर्मोह हैं जिन्हें मेल का ध्यान ।
तेरी भाषा का उन्हें मिलता सच्चा ज्ञान ॥ ६० ॥
रहती जिसकी दृष्टि है मानवता की ओर ।
आकर्षण को पासका वही प्रेम की डोर ॥ ६१ ॥

सच्ची भाषा है यही जिसपर मन की छाप।
भाषा के अनुकूल कृति होती अपने आप ॥ ६२ ॥
सब की बोली बोलकर जो कृति रखते याद।
वे ही तेरे भक्त हैं, सुनते अन्तर्नाद ॥ ६३ ॥
सच्चा अन्तर्नाद या सत्यासत्यविवेक।
मेरी भाषा है सुगम सब हृदयों की एक ॥ ६४ ॥

तेरा सन्देश

सूत्र पिटक इंजील या गीता वेद कुरान।
आवस्ता या कैपिटल सब उपनिषत् पुरान ॥ ६५ ॥
सब सत्यामृत रूप हैं देश काल अनुसार।
देश काल के भेद से हुए अनेक प्रकार ॥ ६६ ॥
देशकाल अनुकूल बन दूर करें जो क्लेश।
सुखपथदर्शक सब वचन हैं तेरे सन्देश ॥ ६७ ॥
सन्देशों से है भरा हर भाषा हर देश।
जो जो जनहित के वचन सब तेरे सन्देश ॥ ६८ ॥

तू सबका

नास्तिक आस्तिक सकल जन करते तेरी चाह।
तू ही नाना रूप में उन्हें बताता राह ॥ ६९ ॥
जो ईश्वर को मानते वे भी तेरे भक्त।
जो न ईश को मानते वे भी हैं अनुरक्त ॥ ७० ॥
तू ही आशा जगत् की तू सबका विश्राम।
सभी दुहाई देरहे लेकर तेरा नाम ॥ ७१ ॥
वीतराग भी रख रहे तेरे में अनुराग।
तेरे पाने के लिये होता सब का त्याग ॥ ७२ ॥

तू अशरणशरण

जब न रहे आशा कहीं विमुख बने संसार ।
निराधार जीवन बने तब तू ही आधार ॥ ७३ ॥
असफलताएँ कर चुकें जब आशाएँ चूर ।
आता आशाधन लिये तब तू जीवनमूर ॥ ७४ ॥
किंकर्तव्यविमूढता करती जब पथरोध ।
तब तू देता जगत का स्वकर्तव्य का बोध ॥ ७५ ॥
तन पर जब संकट पडा उजडगया धनधाम ।
तब तेरे चरणों पड़ा मन करता विश्राम ॥ ७६ ॥
विपदाएँ तो गरजकर करें जगत को भीत ।
किन्तु भक्त मनमें सुने तेरा ही संगीत ॥ ७७ ॥
जब जीवन की वृत्तियाँ चरण शरण पाजायँ ।
तब दुनिया के दुःख सब हृदय को न छू पायँ ॥ ७८ ॥
पाया तेरा शरण तब मिली शान्ति भरपूर ।
दुःख न घायल कर सके रहे हृदयसे दूर ॥ ७९ ॥
जगमें गतिहो या न हो विमुख बने संसार ।
पर तेरे दर्बार का खुला हुआ है द्वार ॥ ८० ॥

तेरा दरबार

तेरा अद्भुत है दरबार ।
तेरे भक्त देखसकते हैं अन्तर्दृष्टि पसार ।
तेरा अद्भुत है दरबार ॥ ८१ ॥
वामांगी भगवती अहिंसा सब धर्मों की जान ।
हाथ जोडकर खडे हुए हैं श्रम विवेक विज्ञान ॥
झुके हुए हैं बल यश आदर जीवन के सब सार ।
तेरा अद्भुत है दरबार ॥ ८२ ॥
शक्ति शारदा लक्ष्मी आदिक हैं सब आज्ञाधीन ।

भक्ति प्रेम वत्सलता गुणगण हैं चरणों में लीन ॥
लोट रहे तेरे चरणों में धन वैभव अधिकार ॥
तेरा अद्भुत है दरबार ॥ ८३ ॥

सकल कलाएँ हाथ पसारे करतीं जीवन नृत्य ।
दुर्गुण भी सद्गुणमय होकर बने हुए हैं भृत्य ॥
कण कण में सुन्दरता बैठी कर सारे शृंगार ।
तेरा अद्भुत है दरबार ॥ ८४ ॥

बुद्ध मसीहा जिन तीर्थंकर पैगम्बर अवतार ।
अगणित भक्त खड़े सेवा में दूत बने तैयार ॥
स्वर्ग मोक्ष अक्षत निचोड़कर पीते रस का न्यार ।
तेरा अद्भुत है दरबार ॥ ८५ ॥

तेरा दर्शक

जिसने पाई भक्ति से तेरी अन्तर्दृष्टि ।
देख सका वह जगत में तेरी सच्ची सृष्टि ॥ ८६ ॥
दुनिया के सुख दुःख के जो विचार में दक्ष ।
चतुर विचारक जो बना तू उसको प्रत्यक्ष ॥ ८७ ॥
जिसके मन में है नहीं अपनेपन का पक्ष ।
स्वत्वमोह विजयी वही करे तुझे प्रत्यक्ष ॥ ८८ ॥
नये पुराने का नहीं जिसके मन में पक्ष ।
कालमोह-विजयी वही करे तुझे प्रत्यक्ष ॥ ८९ ॥
द्वंद मिटाने के लिये करता तनिक न ढील ।
तेरा दर्शक है वही परम समन्वयशील ॥ ९० ॥
प्रेम न्याय का सदन जो करे स्वपर उपकार ।
तेरा दर्शक है वही योगी साधु उदार ॥ ९१ ॥

तेरे भक्त

परम विवेकी जो रहें जनहित में अनुरक्त ।

सदाचार की मूर्ति हों वे ही तेरे भक्त ॥ ९२ ॥
यीशु कृष्ण जरथुस्त जिन बुद्ध मुहम्मद राम ।
मार्क्स आदि अगणित हुए तेरे भक्त ललाम ॥ ९३ ॥
ऋषि पैगंबर तीर्थंकर या मसीह अवतार ।
तेरे सच्चे भक्त सब करते जगदुद्धार ॥ ९४ ॥
यह दुनिया हो स्वर्गसी रहें न इसमें पाप ।
इसीलिये वे रातदिन पचते अपनेआप ॥ ९५ ॥
तेरे भक्तों को नहीं अधिकारों की चाह ।
विफल रहें या हों सफल उन्हें नहीं पर्वाह ॥ ९६ ॥
राजा हो या रंक हो उनको एक समान ।
उनका सच्चा मित्र वह जिसमें हो ईमान ॥ ९७ ॥
तेरे भक्तों को नहीं अपनी कुछ पर्वाह ।
स्वर्ग मोक्ष घर घर नचें उनके मनकी चाह ॥ ९८ ॥

अनुरोध

भक्तों की यह चाह ही करदे पूरी नाथ ।
जग तेरे पथ पर चले सत्यभक्त के साथ ॥ ९९ ॥
कर मनुष्य के हृदय में स्वर्ग मोक्ष अवतार ।
पशुता का संहार हो बने नया संसार ॥ १०० ॥

गीत

बना दे एक नया संसार ।
करादे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥
हो विवेक हो धर्म समन्वय जातिपांति हो नष्ट ।
नरनारी-समभावी सब हों रहे न हिंसा कष्ट ॥
सत्य वचन ईमान शील हो दुर्व्यसनों कीहार
बनादे एक नया संसार करा दे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥ १०१ ॥

मिहनत की रोटी खाये सब रक्खें श्रम का ध्यान ।
अतिसंग्रह अतिभोग नहीं हो हो सब ही बलवान ॥
हों स्वतंत्र गौरवशाली सब पालें शिष्टाचार ।
बनादे एक नया संसार करादे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥ १०२ ॥
भाग्य की न पर्वाह जहां हो चलें यत्न की राह ।
कलियुग की न निराशा मन में हो विकास की चाह ॥
सेवाभावी योग्य सत्यभक्तों की हो सरकार ।
बनादे एक नया संसार करादे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥ १०३ ॥
पशुबल की गर्जना नहीं हो हो युद्धों का अन्त ।
भौतिक सुख साधन असीम हों फिर भी हों सब सन्त ॥
मानव की मानवभाषा हो लिपि भी एक प्रकार ।
बनादे एक नया संसार करादे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥ १०४ ॥
सब देशों का एक देश हो एक सभी का राज ।
सब जगमें हो कौटुम्बिकता मानव सत्यसमाज ॥
बने कर्मयोगी जग सारा हो संसार ससार ।
बनादे एक नया संसार, करादे स्वर्ग मोक्ष अवतार ॥ १०५ ॥

— ❀ —

२–विवेकाध्याय

गीत

सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ।
इसके आगे कभी न चलती किसी शास्त्र की टेक ॥
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०६ ॥

सकल शास्त्र बनते विवेक से सब विवेक के अर्थ ।
है विवेकमयता ही जीवन बिन विवेक सब व्यर्थ ॥
पाई अगर विवेक दृष्टि तो सकल शास्त्र हैं एक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०७ ॥

सूत्र पिटक गीता आवस्ता वेद कुरान पुरान ।
इंजीलादि सकल शास्त्र हैं विवेक की सन्तान ॥
सकल शास्त्र बनते सत्यामृत अगर न हो अतिरेक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०८ ॥

श्रद्धा भक्ति प्रेम वत्सलता दया आदि सब रंग ।
सत् शिव सुन्दर बनते तब जब हों विवेक के संग ॥
होता है विवेक के हाथों जीवन का अभिषेक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०९ ॥

दोहा

सत्येश्वर दर्शन यही यही परम वरदान ।
बने विवेकाधार मन हो सदसत् का भान ॥ ११० ॥

मानवता का मूल यह विद्वत्ता का सार ।
बुद्धि हृदय निर्मोह हों बने विवेकाधार ॥ १११ ॥

क्या अच्छा क्या है बुरा किससे जगकल्याण ।
सच्ची समझ विवेक यह सब शास्त्रों का प्राण ॥ ११२ ॥

पक्षपात को छोड़कर ढूंढो जगकल्याण ।
दूर करो मदमोह सब करो स्वपर का त्राण ॥ ११३ ॥

जादू टोना देखके यदि गुरुता का ताज ।
तो जादूगर जगत के कहलायें गुरुराज ॥ १३८ ॥
चमत्कारको देख यदि हो गुरुता का भान ।
तो गुरुता का मूल हो यह भौतिक विज्ञान ॥ १३९ ॥
वैज्ञानिक के सामने क्या हैं भूत पिशाच ।
कण कण में दिखता यहां महाभूत का नाच॥ १४० ॥
मंत्र तंत्र से है नहीं गुरुता का कुछ मेल ।
वैज्ञानिक के सामने ये बच्चों के खेल ॥ १४१ ॥
व्यर्थ कष्ट भी है नहीं गुरुता की पहिचान ।
व्यर्थ कष्ट में है भरा दम्भ और अज्ञान ॥ १४२ ॥
देखा यदि पचाग्नि तप गुरु की हुई न खोज ।
चूल्हे का वर्तन भला अन्न पकाता रोज ॥ १४३ ॥
हुआ न जिनसे लोकहित व्यर्थ गये वे कष्ट ।
ऊसर को जोता अगर हुआ परिश्रम नष्ट ॥ १४४ ॥
व्यर्थ कष्ट तप है नहीं करो न जीवन नष्ट ।
इससे तो पशु ही भले सहते सार्थक कष्ट ॥ १४५ ॥
ख्याति लाभ के ही लिये कष्ट सहें जो लोग ।
उन छलियों के ढोंग से करो नहीं सहयोग ॥ १४६ ॥
व्यर्थ कष्ट से है नहीं गुरुता का सम्बन्ध ।
अद्भुत वेषों में नहीं गुरुता की कुछ गन्ध ॥ १४७ ॥
सीधा सादा वेष हो सुविधा के अनुसार ।
जनसेवा ईमान हो बनता सुगुरु उदार ॥ १४८ ॥
सम्प्रदाय कोई रहे कोई भी हो वेष ।
वह गुरु जिसका होगया अन्तर्मल निःशेष ॥ १४९ ॥

२–विवेकाध्याय

गीत

सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ।
इसके आगे कभी न चलती किसी शास्त्र की टेक ॥
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०६ ॥

सकल शास्त्र बनते विवेक से सब विवेक के अर्थ ।
है विवेकमयता ही जीवन बिन विवेक सब व्यर्थ ॥
पाई अगर विवेक दृष्टि तो सकल शास्त्र हैं एक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०७ ॥

सूत्र पिटक गीता आवस्ता वेद कुरान पुरान ।
इजीलादि सकल शास्त्र हैं विवेक की सन्तान ॥
सकल शास्त्र बनते सत्यामृत अगर न हो अतिरेक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०८ ॥

श्रद्धा भक्ति प्रेम वत्सलता दया आदि सब रंग ।
सत् शिव सुन्दर बनते तब जब हों विवेक के संग ॥
होता है विवेक के हाथों जीवन का अभिषेक ।
सकल शास्त्रों का शास्त्र विवेक ॥ १०९ ॥

दोहा

सत्येश्वर दर्शन यही यही परम वरदान ।
बने विवेकाधार मन हो सदसत् का भान ॥ ११० ॥

मानवता का मूल यह विद्वत्ता का सार ।
बुद्धि हृदय निर्मोह हों बने विवेकाधार ॥ १११ ॥

क्या अच्छा क्या है बुरा किसमें जगकल्याण ।
सच्चा समझ विवेक यह सब शास्त्रों का प्राण ॥ ११२ ॥

पक्षपात को छोड़कर ढूंढ़ो जगकल्याण ।
दूर करो मदमोह सब करो स्वपर का त्राण ॥ ११३ ॥

बालकपन में जो पड़े भले बुरे संस्कार ।
अब पूरे निःपक्ष बन उनका करो विचार ॥ ११४ ॥

मोह-विजय

जो न परीक्षा सह सकें बने न सत्याधार ।
कितने भी प्यारे लगें छोड़ो वे संस्कार ॥ ११५ ॥
'जो अपना सच्चा वही' यह है बुरी कुटेक ।
'जो सच्चा अपना वही' रक्खो यही विवेक ॥ ११६ ॥
स्वत्वमोह के राज्य में गर्जे रहा अभिमान ।
मानव के आकार में जगत बना शैतान ॥ ११७ ॥
कालमोह के राज्य में वृथा हुए विद्वान ।
मानव के आकार में जगत बना हैवान ॥ ११८ ॥
परम्परा की बातपर करो स्वतंत्र विचार ।
सत्यधर्म के मिलन की रूढ़ि न ठेकेदार ॥ ११९ ॥
नये पुराने का रहा जिनके मनमें मोह ।
वे करते दुर्भाग्य से सत्येश्वर-विद्रोह ॥ १२० ॥
सत्येश्वर विद्रोह में अंधकार का राज ।
अंधकार के राज में बनता नरक समाज ॥ १२१ ॥
वे बचते इस नरक से उन्हें न इसका त्रास ।
जिनका मन निर्मोह है सत्येश्वर का दास ॥ १२२ ॥
मोही मन क्या कर सके सत्यासत्य-विचार ।
यदि विद्वत्ता भी मिले तो दिमाग का भार ॥ १२३ ॥
रहे पुराना या नया करो न कुछ पर्वाह ।
जिससे जगकल्याण हो करो उसी की चाह ॥ १२४ ॥
रखो सदा नि:पक्षता करदो दूर कुटेक ।
बनो परीक्षक जगत के रखकर संग विवेक ॥ १२५ ॥

गुरु आगम या देव हो या हो लोकाचार ।
करो परीक्षा बुद्धि से करो उचित व्यवहार ॥ १२६ ॥

गुरु

जो सेवापथ में बढ़ा जिसके मन ईमान ।
सत्पथ में लेजाय जो वह है सुगुरु महान ॥ १२७ ॥
स्वार्थ की न हो मुख्यता करे स्वपर उपकार ।
वह सद्गुरु करता नहीं गुरुता का व्यापार ॥ १२८ ॥
धन आदर या कीर्तिकी जिसे नहीं पर्वाह ।
वही सुगुरु जिसके हृदय है जनहित की चाह ॥ १२९ ॥
गुरुता के लक्षण नहीं आडम्बर या वेष ।
दम्भ ढोंग आये जहां गुरुता बची न शेष ॥ १३० ॥
गुरुता के लक्षण नहीं भक्ति-रसीले बोल ।
नृत्य गीत या बांसुरी बीन खंजरी ढोल ॥ १३१ ॥
जीवन में उतरें नहीं दिये हुए व्याख्यान ।
गुरुता वहां न आसकी फोनोग्राफ समान ॥ १३२ ॥
राख रमाने से अगर सद्गुरुता आजाय ।
घूरे की पूजा करो ढेरों राख समाय ॥ १३३ ॥
जटाजूट के संग से यदि गुरुता आजाय ।
क्यों न नारियल पूजते जो कि जटामय-काय ॥ १३४ ॥
नग्न दिगम्बर वेषमें गुरुता अगर समाय ।
सारे पशु सद्गुरु बनें परम दिगम्बर काय ॥ १३५ ॥
मुँहपत्ती यदि बन सके सद्गुरुता का साज ।
चढ़ा-तोवरा अश्व तब कहलाये गुरुराज ॥ १३६ ॥
नाना आसन देखकर यदि गुरुता का भान ।
सर्कस के बच्चे सभी तब हैं सुगुरु महान ॥ १३७ ॥

जादू टोना देखके यदि गुरुता का ताज ।
तो जादूगर जगत के कहलायें गुरुराज ॥ १३८ ॥
चमत्कारको देख यदि हो गुरुता का भान ।
तो गुरुता का मूल हो यह भौतिक विज्ञान ॥ १३९ ॥
वैज्ञानिक के सामने क्या हैं भूत पिशाच ।
कण कण में दिखता यहा महाभूत का नाच॥ १४० ॥
मंत्र तंत्र से है नहीं गुरुता का कुछ मेल ।
वैज्ञानिक के सामने ये बच्चों के खेल ॥ १४१ ॥
व्यर्थ कष्ट भी है नहीं गुरुता की पाहिचान ।
व्यर्थ कष्ट में है भरा दम्भ और अज्ञान ॥ १४२ ॥
देखा यदि पचाग्नि तप गुरु की हुई न खोज ।
चूल्हे का वर्तन भला अन्न पकाता रोज ॥ १४३ ॥
हुआ न जिनसे लोकहित व्यर्थ गये वे कष्ट ।
ऊसर को जोता अगर हुआ परिश्रम नष्ट ॥ १४४ ॥
व्यर्थ कष्ट तप है नहीं करो न जीवन नष्ट ।
इससे तो पशु ही भले सहते सार्थक कष्ट ॥ १४५ ॥
ख्याति लाभ के ही लिये कष्ट सहें जो लोग ।
उन छलियों के ढोंग से करो नहीं सहयोग ॥ १४६ ॥
व्यर्थ कष्ट से है नहीं गुरुता का सम्बन्ध ।
अद्भुत वेषों में नहीं गुरुता की कुछ गन्ध ॥ १४७ ॥
सीधा सादा वेष हो सुविधा के अनुसार ।
जनसेवा ईमान हो बनता सुगुरु उदार ॥ १४८ ॥
सम्प्रदाय कोई रहे कोई भी हो वेष ।
वह गुरु जिसका होगया अन्तर्मल निःशेष ॥ १४९ ॥

गृही रहे संन्यस्त या दोनों एक समान ।
वह गुरु जिसका है सदा जगके हितपर ध्यान ॥ १५० ॥
लेने से जो दे अधिक परम साधुताधाम ।
जो उद्धारक वह सुगुरु करना उसे प्रणाम ॥ १५१ ॥
ज्ञान नहीं संयम नहीं और न पर उपकार ।
वे कुसाधु गुरुवेष में हैं पृथ्वी के भार ॥ १५२ ॥
धूर्त लोग गुरुवेषमें बने रंक से राव ।
वे संसार समुद्र में हैं पत्थर की नाव ॥ १५३ ॥
जो देने की भीति से दुनिया से भगजाय ।
उसकी पूजा मत करो समझो टली बलाय ॥ १५४ ॥
भगने का तो ढोंग है भीतर मन ललचाय ।
बार बार मुँह फेरकर मानों नहीं रिसाय ॥ १५५ ॥
तनका तो आसन जमा मनके कटे न पाँव ।
बगुला तो ध्यानी बना पर मछली पर दाँव ॥ १५६ ॥
बिछा हुआ है जगत में कुगुरु जनों का जाल ।
उसे तोड़ने के लिये ले विवेक करवाल ॥ १५७ ॥
अगर न सद्गुरु मिल सके तो खुद को गुरु मान ।
भूखा ही रहना भला भला नहीं विषपान ॥ १५८ ॥
संयम ज्ञान विश्वहितमें जो तुझसे आगे आया ।
करता तुझे समुन्नत जो वह तेरा गुरु कहलाया ॥
पंथ वेष पद मोह छोड़कर करले सुगुरु परीक्षा ।
बन निःपक्ष स्वपरहितकारी ले विवेक की दीक्षा ॥ १५९ ॥

शास्त्र

लोक-हितंकर सत्यमय देशकाल-अनुकूल ।
सत्पथदर्शक वचन ही, शास्त्र, धर्म का मूल ॥ १६० ॥

सत्यभक्त के जो वचन, सत्येश्वर वरदान ।
सत्यामृत जिनमें भरा वे ही शास्त्र महान ॥ १६१ ॥
भाषा कोई भी रहे इसका नहीं विचार ।
सत्यवचन बस चाहिये वही शास्त्र का सार ॥ १६२ ॥
बूढे जो लिखकर मरें उसको शास्त्र न जान ।
हम बूढ़े होकर मरें तो क्या हुए महान ॥ १६३ ॥
पुरखे बनते हैं सभी मूर्ख और विद्वान ।
मरे कि पुरखा बनगये कैसे हुए महान ॥ १६४ ॥
नया पुरानापन नहीं शास्त्रों की पहिचान ।
होकरके नि:पक्ष रख सत्य वचन पर ध्यान ॥ १६५ ॥
शास्त्रविरोधी हो भले सत्य न होता हीन ।
सत्यविरोधी शास्त्र पर हैं कौडी के तीन ॥ १६६ ॥
अपने अनुभव तर्क की आंखें तनिक पसार ।
सब शास्त्रोंका शास्त्र पढ़ खुला हुआ संसार ॥ १६७ ॥

गीत

भाई पढ़ले यह ससार ।
खुला हुआ है महाशास्त्र यह शास्त्रों का आधार ।
भाई पढ़ले यह संसार ॥ १६८ ॥
इनको ही पढ़कर बनते हैं सत्यामृत सद्ग्रंथ ।
इसको ही आधार बनाकर बनते सारे पथ ॥
इसमें लिखे सकल आचार ।
भाई पढ़ले यह संसार ॥ १६९ ॥
अणु अणु में पत्तों पत्तों में लिखा हुआ है ज्ञान ।
दु:ख और सुख दुखसुख कारण की सच्ची पहिचान ॥
करले इसका पूर्ण विचार ।
भाई पढ़ले यह ससार ॥ १७० ॥

इस के ही छाया समान हैं गीता वेद कुरान।
सूत्र पिटक इंजील केपिटल मय उपनिषत पुरान॥
सब शास्त्रों का मूलाधार।
भाई पढ़ले यह संसार॥ १७१॥

इसी शास्त्रको देख सुनाते पैगम्बर पैगाम।
तीर्थंकर हैं तीर्थ बनाते कर जनहित के काम॥
लेते अवतारी अवतार।
भाई पढले यह संसार॥ १७२॥

सब शास्त्रों की यही कसौटी यही सभी का मूल।
इसके अगर विरुद्ध गये तो हुए शास्त्र सब भूल॥
सब रस अलंकार बेकार।
भाई पढले यह संसार॥ १७३॥

सत्यभक्त आजें आंखों में सत्येश्वर-पद-धूल।
दिव्य दृष्टि से देख सकें वे सब शास्त्रों का मूल।
बहती सत्यामृत की धार।
भाई पढ़ले यह संसार॥ १७४॥

यही अकृत्रिम शास्त्र है यही अनादि अनन्त।
अनक्षरी वाणी यही सुनते ऋषि मुनि संत॥ १७५॥
इसकी छाया मात्र हैं वेद कुरान पुरान।
सूत्र श्रुति स्मृति सब मिलें करलो इसका ध्यान॥ १७६॥
सत्यभक्तको दी जभी सत्येश्वर ने दृष्टि।
सत्यभक्त तब पढसके भीतर से यह सृष्टि॥ १७७॥
सत्य दृष्टि जब मिलगई समझालिये सब शास्त्र।
अंधकार मनका मिटा मिला परम दिव्यास्त्र॥ १७८॥
तभी समझमें आगये जगके सारे वेद।
दिखलाई पड़ने लगा सत्य तथ्य का भेद॥ १८९॥

अभिधा लक्षण व्यञ्जना हुए सभी सुज्ञात ।
आंखों के आगे नची पात पात की बात ॥ १८० ॥
तभी कथा साहित्यका ज्ञात हुआ सब मर्म ।
रूपक या दृष्टान्त में भरा हुआ है धर्म ॥ १८१ ॥
धर्मशास्त्र बतलारहे क्या है पथ्य अपथ्य ।
बतलाते इतिहास हैं क्या है तथ्य अतथ्य ॥ १८२ ॥
दर्शन हो इतिहास हो या हो विश्व-विचार ।
धर्मशास्त्र के संग सब सिखलाते व्यवहार ॥ १८३ ॥
धर्मशास्त्र में शास्त्र सब सिखलाते आचार ।
तथ्य यहां पर गौण है यहां सत्य सुविचार ॥ १८४ ॥
अगर तथ्य ही मुख्य हो तो न धर्म के अंग ।
गाये जाते हों भले धर्मशास्त्र के संग ॥ १८५ ॥
जिससे सत्य न मिल सके जो जनहित प्रतिकूल ।
ऐसे शास्त्राभास को शास्त्र समझना भूल ॥ १८६ ॥
दिखलाता कर्तव्य जो जगको करे न भ्रान्त ।
सत्येश्वर सन्देश वह विधि हो या दृष्टान्त ॥ १८७ ॥
शास्त्र परीक्षण कर सदा इसमें रहे न भूल ।
देशकाल अनुकूल है अथवा है प्रतिकूल ॥ १८८ ॥
देशकालका ध्यान रख मत कर इसमें भूल ।
कभी रहें अनुकूल जो आज बने प्रतिकूल ॥ १८९ ॥
बन जाता प्रतिकूल जो वह है मृतक समान ।
मृतकों को तो भेजिये आदर सहित मसान ॥ १९० ॥
आदर करने लिये रचदो भले मज़ार ।
पर मुर्दों से मत भरो अपना घर संसार ॥ १९१ ॥
देशकाल प्रतिकूल बन जो हैं मृतक समान ।

शास्त्र समझकर मतकरो उन मुर्दों का ध्यान ॥ १९२ ॥
पुरातत्ववेत्ता भले मरघट करें निवास ।
हाड़पींजरा देखकर रचडालें इतिहास ॥ १९३ ॥
भले अजायबघर बने भूतों का संसार ।
मुर्दे शास्त्रों का जहा भरा रहे भंडार ॥ १९४ ॥
जिसको करना हो करे पुरातत्व की खोज ।
पुरातत्व की चीज का काम नहीं हररोज ॥ १९५ ॥
ऐसे जिन्दा शास्त्र हों हरदिन आवें काम ।
दिखलायें जो जगत को सत्येश्वर का धाम ॥ १९६ ॥
मोह और मद छोडकर शास्त्र कुशास्त्र विचार ।
सत्यामृत को ढूढ़ले जिससे हो उद्धार ॥ १९७ ॥
इष्टदेव कल्याणमय जिनमें रहती भक्ति ।
जिनके नामस्मरण से मन में आती शक्ति ॥ १९८ ॥
जो गुण हैं कल्याणमय जीवन के आधार ।
वे ही सच्चे देव हैं निराकार साकार ॥ १९९ ॥
उन गुणदेवों पर टिका सारा यह संसार ।
जितनी उनकी साधना उतना ही उद्धार ॥ २०० ॥
साधक जो गुणदेव के करें स्वपर-उद्धार ।
जग तारक बनकर बनें व्यक्ति देव भवपार ॥ २०१ ॥
सेवा और चारित्रबल पाया ज्ञान अपार ।
बने परमगुरु जगत के कर जग का उद्धार ॥ २०२ ॥
देवों के भी देव हैं सत्येश्वर भगवान ।
मात अहिंसा भगवती परमेश्वरी महान ॥ २०३ ॥
इनके सेवक तुल्य हैं बल विवेक विज्ञान ।
शक्ति शारदा श्री कला भक्ति प्रेम सद्ध्यान ॥ २०४ ॥

निराकार गुणदेव हैं अगणित अमर अपार ।
पर आराधक के लिये बनते सब साकार ॥ २०५ ॥
करना इनकी साधना मानवता का प्राण ।
जितनी इनकी साधना उतना जनकल्यान ॥ २०६ ॥
यदि साधकता हो न तो आराधकता व्यर्थ ।
आराधकता चाहिये साधकता के अर्थ ॥ २०७ ॥
पुण्य न जीवन में किया हटा न पाप कलाप ।
तब निष्फल आराधना व्यर्थ नाम का जाप ॥ २०८ ॥
करो यही बस याचना साधकता आजाय ।
आराधकता है यही मन न कहीं ललचाय ॥ २०९ ॥
संकट कुछ टलता नहीं जपो भले ही नाम ।
पर संकट को पीसना सहन शक्ति का काम ॥ २१० ॥
सहन शक्ति मिलजाय यह इसीलिये है नाम ।
यह सच्ची आराधना परम मुक्ति का धाम ॥ २११ ॥
गुणदेवों के जाप से करलो हृदय समर्थ ।
व्यक्ति देव से सीखलो साधकता का अर्थ ॥ २१२ ॥
छोडो झूठे देव सब ग्रहगण भूत पिशाच ।
पागल बनकर मतकरो देवभ्रम से नाच ॥ २१३ ॥
उनको देव न मानना जो हैं शत्रु समान ।
तुमको डरवाते सदा फैलाते अज्ञान ॥ २१४ ॥
रहते वहां कुदेव ये जहां रहे अज्ञान ।
अंधकार के रूप में भजते हैं नादान ॥ २१५ ॥
रूपभ्रम रहता जहां वहां देव असमर्थ ।
बनते देव कुदेव हैं होती पूजा व्यर्थ ॥ २१६ ॥
वीतरागका यदि किया रसिकों सा शृंगार ।

तो उनसे क्या पढ़सके खुला न अन्तर्द्वार ॥ २१७ ॥
जिसका जैसा रूप हो जैसा हो उपयोग ।
वैसा ही गुणगान हो तब हों साधक लोग ॥ २१८ ॥
देव नहीं देते कभी धन वैभव अधिकार ।
यह कुयाचना मतकरो यह है अतिनिःसार ॥ २१९ ॥
साधकता ही मागलो उसका करो विचार ।
मुक्ति और वैकुंठ का खुला हुआ है द्वार ॥ २२० ॥
जब तुम साधक बन गये ज्ञानकर्म के साथ ।
आये अपने आप तब अर्थ काम भी हाथ ॥ २२१ ॥
करो नहीं दुरुपासना रहो पाप से दूर ।
पशुबलि आदिक मत करो देव न होते क्रूर ॥ २२२ ॥
कोई देव न होसके व्यसनी अथवा क्रूर ।
जो व्यसनी या क्रूर हो कर दो उसको चूर ॥ २२३ ॥
जननी जनक समान जो जो है कृपानिधान ।
कैसे खायेंगे भला वे अपनी सन्तान ॥ २२४
परनिंदा करना नहीं यह है बुरी बलाय ।
उससे वह सब सीखलो जो जिससे मिलजाय ॥ २२५ ॥
मोह और मद छोड़कर रँगो प्रेम के रग ।
सबके आराधक बनो कर विवेक का संग ॥ २२६ ॥
पाच दोष ये छोड़कर बनो दिव्यतागार ।
आराधक बन देखलो देवों का दरबार ॥ २२७ ॥

गीत

सब देवों का दरबार भरा है भाई ।
है सत्य सभी का पिता अहिंसा माई ॥ २२८ ॥
ये चिदानन्द शिवशिवा गुणों की काया ।

हैं निराकार साकार अनोखी माया ।
धन बल पद यश अधिकार इन्हीं की छाया ।
सब ही शास्त्रों ने गान इन्हीं का गाया ।
इनका आराधन ध्यान परम सुखदाई ।
है सत्य सभी का पिता अहिंसा माई ॥ २२९ ॥

सारे आगम इनके एकेक इशारे ।
हैं वेषतुल्य सामयिक धर्ममत सारे ॥
इनके रजगण हैं आंखों के उजयारे ।
ये नभ समान गुणगण हैं रवि शशि तारे ॥
इनको पाना है सब से बड़ी कमाई ।
है सत्य सभी का पिता अहिंसा माई ॥ २३० ॥

इनमें जगके सारे गुणदेव समाये ।
योगी फिरते हैं इनमें योग रमाये ।
सब भक्त खड़े हैं आगे शीस नमाये ।
तीर्थंकर पैगम्बर अवतार कहाये ॥
इनसे भक्तों ने दिव्यरूपता पाई ।
है सत्य सभी का पिता अहिंसा माई ॥ २३१ ॥

वे सत्यभक्त ही व्यक्ति देव कहलाते ।
जग को सत्येश्वर के सन्देश सुनाते ॥
सन्देशों को पाकर सर्वज्ञ कहाते ।
ऋषि मुनि जिन योगी या मसीह बनजाते ॥
सब सत्येश्वर के दूत परस्पर भाई ।
है सत्य सभी का पिता अहिंसा माई ॥ २३२ ॥

मनके मन्दिर में अन्तर्दृष्टि जमाओ ।
समभावी बनकर भव्यभाव फैलाओ ।
सत्येश्वर की झाकी देखो गुणगाओ ।
भूतलसे उड़कर चलो (चलो बस चलो)
न देर लगाओ ॥

रस पिलारहा वैकुंठ मुक्ति है भाई ।
सब देवों का दरबार भरा है भाई ॥ २३३ ॥

लोकाचार

देशकालको देखकर बनते लोकाचार ।
अतिपरिवर्तनशील वे देखो दृष्टि पसार ॥ २३४ ॥
तब तक ही पालन करो जब तक हों अनुकूल ।
मोह छोड़कर छोड़दो ज्यों ही हों प्रतिकूल ॥ २३५ ॥
यह जड़ता का चिन्ह है बनना रूढ़ि-गुलाम ।
मानव के आकार में है पशुता का काम ॥ २३६ ॥
ऋतु ऋतु के अनुकूल ज्यों अशन पन परिधान ।
युग युग के अनुकूल त्यों लोकाचार विधान ॥ २३७ ॥
कल की हो या आज की इसका करो न पक्ष ।
जो आवश्यक रूढ़ि हो बनो उसीमें दक्ष ॥ २३८ ॥
'पुरखे क्या मूरख रहे जिनने किये रिवाज ।
इस भोले आक्षेप का कौड़ी मूल्य न आज ॥ २३९
पुरखों में भी मूर्ख थे थे असत्य के दास ।
इसमें क्या आश्चर्य है जब होरहा विकास ॥ २४० ॥
पंडित होती देखते मूरख की सन्तान ।
कीचड़ से होता कमल क्या न तुम्हें है ध्यान ॥ २४१
वे पुरखे ही तो रहे जिनसे उजड़ा धाम ।
घर बाहर सा होगया भारत हुआ गुलाम ॥ २४२ ॥
वे पुरखे ही तो रहे जिनसे टूटा धाम ।
भाई से भाई कटे पच न सका इसलाम ॥ २४३ ॥
वे पुरखे ही तो रहे कुंद किया घरबार ।
खंड खंड हो बिल बने घर के चार हजार ॥ २४४ ॥

इस भारत प्रसाद की बजी ईंट से ईंट ।
चिथड़े चिथड़े हो गई रंगविरंगी छींट ॥ २४५ ॥
वे पुरखे ही तो रहे मूरखता के भूत ।
पशु को तो छूते रहे मानव किया अछूत ॥ २४६ ॥
वे पुरखे ही तो रहे भुला चुके जो ज्ञान ।
सदियों तक लुटते रहे सहे घोर अपमान ॥ २४७ ॥
वे पुरखे ही तो रहे पशुता के अवतार ।
सामन्तों के पोप के सब के बने शिकार ॥ २४८ ॥
वे पुरखे ही तो रहे जिनकी जड़ता घोर ।
टुकर टुकर बस देखली दुर्गति दांत निपोर ॥ २४९ ॥
उन पुरखों ने जो दिये हम को रूढ़ि रिवाज ।
अविवेकी बन किस तरह सहलें उनका राज ॥ २५० ॥
रूढ़ि भली है या बुरी इसका करें विचार ।
पर पुरखों के नाम पर रखें न लोकाचार ॥ २५१ ॥
अगर मानलें हम कि थे-पुरखे सब विद्वान ।
तो भी उनकी रूढ़ि के हैं गुलाम नादान ॥ २५२ ॥
उनने जो कुछ भी किया अपने युग अनुसार ।
हम भी युग अनुसार तब करलें रूढ़ि विचार ॥ २५३ ॥
कल जो कुछ अनुकूल था आज बना प्रतिकूल ।
आज जो कि अनुकूल हैं कल होसकता शूल ॥ २५४ ॥
जब तक जो अनुकूल हो तब ही तक लो काम ।
रूढ़ि हुई प्रतिकूल तब छोड़ो उसका नाम ॥ २५५ ॥
रूढ़ि नहीं जब काम की तभी हुई बेजान ।
निकल गई जब जान तब भेजो उसे मसान ॥ २५६ ॥
जिन्दे ही घर में रहें मुर्दे जाते मसान ।

इतनी मोटी बात में जग क्यों है अनजान ॥ २५७ ॥
जब तक हलुआ थाल में करो जीभ के साथ।
जब पचकर टट्टी हुआ तब मत डालो हाथ ॥ २५८ ॥
जब तक रस हो अन्न में करें पेट में वास।
जब पचकर टट्टी बने पहुँचाओ सडास ॥ २५९ ॥
'अन्न रहेगा अन्न ही' यह है झूठी टेक।
बनो न मलमोही कभी छोडो सब अविवेक ॥ २६० ॥
बनो विवेकी समझ लो जग के लोकाचार।
सब के लोकाचार में देखो क्या क्या सार ॥ २६१ ॥
जहा कहीं भी सार हो दिखलाओ अनुराग।
जिनमें हो निःसारता करदो उसका त्याग ॥ २६२ ॥
लोकाचार विमूढता तब आती है पास।
जब मानव तन में छिपा पशुमन करे निवास ॥ २६३ ॥
जाचो गुरु श्रुत देव सब जाचो लोकाचार।
बनो परीक्षक विश्व के बनो विवेकाधार ॥ २६४ ॥
जो न विवेकी बन सके पा न सके वह मर्म।
अविवेकी बेआख का कैसे देखे मर्म ॥ २६५ ॥
रक्खो मत यह दीनता 'हम तो हैं अनजान।
करें परीक्षा किस तरह जब न बने विद्वान' ॥ २६६ ॥
क्या चिन्ता, पाई नहीं–विद्वत्ता की छाप।
सहज बुद्धि निष्पक्षता मिलती अपने आप ॥ २६७ ॥
सहज बुद्धि निष्पक्षता दोनों हैं पर्याप्त।
इनसे पूरा काम ले बन तू अपना आप्त ॥ २६८ ॥
तू विद्वत्ता के बिना दे न सके व्याख्यान।
सहज बुद्धि पर कर सके सदसत् की पहिचान ॥ २६९ ॥

वाद भले ही हो कठिन घात और प्रतिघात ।
पर न समझना है कठिन हित अनहित की बात ॥ २७० ॥
हित अनहित की बात का समझ सकें सब मर्म ।
सरल परीक्षा धर्म की 'क्या है हितकर कर्म' ॥ २७१ ॥
धर्मशास्त्र निर्माण की भले नहीं हो शक्ति ।
तो भी जाच न है कठिन रख विवेक में भक्ति ॥ २७२ ॥
गान न जानें या करें—गर्धव स्वर में गान ।
वे भी तो हैं जाचते तानसेन की तान ॥ २७३ ॥
अगर रसोई में भिडें करदे सब बर्बाद ।
पर न जाचमें चूकते लेकर नाना स्वाद ॥ २७४ ॥
सीधी रेखा खीचना जिन्हें नहीं हैं याद ।
चित्रकला के पारखी बनने में उस्ताद ॥ २७५ ॥
तुम क्यों चिन्ता कर रहे क्यों बनते हो दीन ।
करो परीक्षा धर्म की बनो विवेकाधीन ॥ २७६ ॥
सच्चा शास्त्र विवेक है यदि यह रक्खा साथ ।
सब शास्त्रों की आगई कुंजी अपने हाथ ॥ २७७ ॥

गीत

विवेकी बनजाये संसार ।
मानव तन में मानव मन हो प्रज्ञा का भंडार ।
विवेकी बनजाये संसार ॥ २७८ ॥
हो बौद्धिक अदीनता मनमें पशुता का संहार ।
क्या प्रमाण क्या अप्रमाण है इसका रहे विचार ।
विवेकी बनजाये संसार ॥ २७९ ॥
बने सभी निष्पक्ष परीक्षक बने न मोहागार ।
हित अनहित पहिचान करें सब हो सबका उद्धार ॥
विवेकी बनजाये संसार ॥ २८० ॥

देव शास्त्र गुरु में विवेक हो जाचें लोकाचार।
रूढ़िमूढ़ता अन्धभक्ति अब ले न सकें बेगार॥
विवेकी बनजाये संसार॥ २८१॥
कोरे कागज के समान हो मन निष्पक्ष उदार।
जो जो सत्य दिखे उस सब की लें तसवीरें उतार॥
विवेकी बनजाये संसार॥ २८२॥
घर्ने न 'मेरा ही सच्चा' कह झूठे ठेकेदार।
'सच्चा ही मेरा' कह कर लें सत्यभक्त अवतार॥
विवेकी बनजाये संसार॥ २८३॥
परमशास्त्र माने विवेक को करें स्वपर उपकार।
सत्यभक्ति हो सबके मनमें जिससे बेड़ा पार॥
विवेकी बनजाये संसार॥ २८४॥

---*---

तीसरा अध्याय

सर्वधर्मसमभाव

धर्म का स्वरूप

जो धारण पोषण करे सुखमय करे समाज ।
मन तन वचन विशुद्धिमय धर्म सत्यका राज ॥ २८५ ॥

सब की उन्नति के लिये करें सभी सत्कर्म ।
रहे व्यवस्था विश्व में इसीलिये है धर्म ॥ २८६ ॥

• धर्म परस्पर प्रेम है सत्यवचन है धर्म ।
धर्म कहा ईमान है धर्म विश्वहित कर्म ॥ २८७ ॥

धर्म नियन्त्रण अर्थ का सब का स्वार्थ समाय ।
भूख से न कोई मरे कोई अधिक न खाय ॥ २८८ ॥

वहा धर्म रहता जहा श्रम करते सब लोग ।
श्रमके ही अनुसार सब करते निज निज भोग ॥ २८९ ॥

वहा धर्म रहता जहा सेवा से आदान ।
पापी कहलाते जहा मुफ्तखोर नादान ॥ २९० ॥

वहा धर्म रहता जहां सब हैं आत्मसमान ।
अपने हित के साथमें है पर हितका ध्यान ॥ २९१ ॥

वहा धर्म रहता जहा पूर्ण प्रेम सहयोग ।
मानव मानव में जहा भेद न करते लोग ॥ २९२ ॥

वहा धर्म रहता जहा भोग लालसा मन्द ।
भोगानन्दों से जहा बढ़कर प्रेमानन्द ॥ १९३ ॥

वहा धर्म रहता जहा आनन्दी संसार ।
गली गली घर घर जहा छलक रहा हो प्यार ॥ १९४ ॥

मन्दिर मसजिद चर्च में पूजा पाठ नमाज़ ॥ ३१५ ॥
धर्म प्राप्ति के ही लिये बनते तीर्थस्थान ।
अगर द्वेष बढ़ता वहां समझो उन्हें मसान ॥ ३१६ ॥
मन्दिर मसजिद चर्च का झूठा है सब ठाठ ।
अगर न इनसे पढ़ सके सत्यधर्म का पाठ ॥ ३१७ ॥
जेरुसलम मक्का गया काशी सब बेकार ।
अगर न इनसे पढ़ सके सत्यधर्म का सार ॥ ३१८ ॥

धर्मतीर्थों के भेद

धर्मतीर्थ कोई रहे रखो धर्मपर ध्यान ।
अगर धर्मपर ध्यान तो हैं सब तीर्थ समान ॥ ३१९ ॥
देशकाल के भेद से है तीर्थों में भेद ।
करो समन्वय बुद्धि से मिटजायेगा खेद ॥ ३२० ॥
धर्मतीर्थ पैदा हुए अपने युग अनुसार ।
उस युगका ही ध्यान रख उनका करो विचार ॥ ३२१ ॥
सभी सामयिक सत्य हैं पूर्ण न कोई धर्म ।
सबपर युग की छाप है सब युगहितके कर्म ॥ ३२२ ॥
देशकाल अनुसार सब करते हैं उपकार ।
सब के बनो कृतज्ञ तुम करो सभी से प्यार ॥ ३२३ ॥
अपना युग कुछ और है उनका था कुछ और ॥
इससे हुई विभिन्नता दो न द्वेष को ठौर ॥ ३२४ ॥
भिन्नभिन्न तब तीर्थ हैं भिन्नभिन्न जब लोग ।
भिन्नभिन्न औषध तभी भिन्नभिन्न जब रोग ॥ ३२५ ॥
अगर दूसरों की दवा तुमको नहीं पसन्द ।
तुम मतलो पर क्यों करो भाई भाई द्वंद । ३२६
यदि तुमको कोई दवा हितकर हुई न आज ।

तो भी क्या मालूम है कल हो उसका राज ॥ २२७ ॥
जब जो भी अनुकूल हो उसको करो पसन्द ।
स्वत्वमोह को छोड़कर दूर हटाओ द्वंद ॥ २२८ ॥
धर्मतीर्थ जो देसके करो उसीका गान ।
निन्दास्तुति झूठी न हो रहे सत्यपर ध्यान ॥ २२९ ॥
अपने अपने तीर्थका करो न झूठा गान ।
परतीर्थों का द्वेषसे करो नहीं अपमान ॥ २३० ॥
अपना यदि प्रतिकूल है करदो उसका त्याग ।
पर का यदि अनुकूल है दिखलाओ अनुराग ॥ २३१ ॥
अपना परका कौन है झूठा सब अभिमान ।
था पैदा होते समय हमको किसका ज्ञान ॥ २३२ ॥
जन्म समय हिन्दू न थे न थे मुसल्मा जैन ।
अहंकार की छापने किया हमें बेचैन ॥ २३३ ॥
जिनमें हम पैदा हुए उनने मारी छाप ।
मज़हब कुछ पाये नहीं हमने अपनेआप ॥ २३४ ॥
किनमें रहता पुण्य है किनमें रहता पाप ।
ढूंढे नहीं विचार कर हमनें माई बाप ॥ २३५ ॥
सब के माई बाप हैं सबको है अभिमान ।
किसके सत्य असत्य हैं इसकी क्या पाहिचान ॥ २३६ ॥
मैं मैं हूं क्या इसलिये सब कुछ होता ठीक ।
तू तू है क्या इसलिये सब कुछ हुआ अलीक ॥ २३७ ॥
एक दूसरे के लिये सभी करें 'तुंकार, ।
तू भी सब का 'तू' बना है घमंड बेकार ॥ २३८ ॥
बालकपन के धर्म की करो न कुछ पर्वाह ।
सत्य सत्य ढूंढो सदा चलो सत्य की राह ॥ २३९ ॥

गीत

धर्म है सकल सुखों की राह।
सुख की अगर चाह है तुमको करो धर्म की चाह।
धर्म है सकल सुखों की राह ॥ २९५ ॥
प्राणी अधिक सुखी हों जिससे वह कहलाता धर्म।
सुखवर्धन को निरूप बनाकर समझो धार्मिक कर्म।
रूढ़ियों की न करो पर्वाह।
धर्म है सकल सुखों की राह ॥ २९६ ॥
धर्म नहीं है पराधीनता धर्म नहीं है कष्ट।
जहां धर्म का राज्य वहां हैं सारे कष्ट विनष्ट॥
धर्म ही है शाहों का शाह।
धर्म है सकल सुखों की राह ॥ २९७ ॥
स्वेच्छा और समझदारी से जब हो हितकर कर्म।
निजहित परहित करें समन्वय आता है तब धर्म॥
शांत होते हैं सारे दाह।
धर्म है सकल सुखों की राह ॥ २९८ ॥

दोहा

जहां जबर्दस्ती नहीं वहीं धर्ममय कर्म।
स्वेच्छा से कर्तव्य का पालन करना धर्म ॥ २९९ ॥
धर्म नहीं है चाहता पशुबल का संचार।
सत्संस्कार विवेक ही सच्चे धर्माधार ॥ ३०० ॥
अगर न हो कर्तव्य में पशुबल का संसर्ग।
घर घर में नचने लगें यहीं स्वर्ग अपवर्ग ॥ ३०१ ॥

धर्म और धर्मतीर्थ

मानव धर्म स्वभाव हो करे स्वपर का त्राण।
इसीलिये है धर्म के पंथों का निर्माण ॥ ३०२ ॥

सम्प्रदाय मत पंथ या तीर्थ रिलीजन एक ।
मजहब आदिक विश्व में फैले नाम अनेक ॥ ३०३ ॥
धर्म अनादि अनंत है सत्य अहिंसा धाम ।
धर्मतीर्थ बिगड़ें बने रखकर नाना नाम ॥ ३०४ ॥
हिन्दू ईसाई तथा जैन बौद्ध इस्लाम ।
ये न धर्म के नाम हैं धर्म-तीर्थ के नाम ॥ ३०५ ॥
तीर्थंकर हैं सैकडों करें तीर्थ निर्माण ।
धर्मकर होते नहीं, धर्म, तीर्थ का प्राण ॥ ३०६ ॥
तीर्थस्थापन के लिये होते हैं अवतार ।
पैगम्बर ऋषि तीर्थंकर करते धर्मप्रचार ॥ ३०७ ॥
सत्यभक्त बनकर सभी सत्यधर्म दिखलायँ ।
धर्मतीर्थ रचना करें धर्म सभी पाजायँ ॥ ३०८ ॥
धर्मतीर्थ दिखला रहे सत्यधर्म के कर्म ।
इसीलिये कहलारहे धर्मतीर्थ भी धर्म ॥ ३०९ ॥
जब तक करते लोकहित करें धर्म का दान ।
तबतक जिन्दे तीर्थ ये फिर हैं मृतक समान ॥ ३१० ॥
धर्म कसौटी पर करो धर्मतीर्थ की जाँच ।
घबराओ मत जाँच से है न साँचको आँच ॥ ३११ ॥
धर्म नहीं जो देसके, धर्मतीर्थ वह व्यर्थ ।
जीव न जिसमें रह सके उस तन का क्या अर्थ ॥ ३१२ ॥
धर्मप्राप्ति के ही लिये बनते धर्माचार ।
देशकाल के भेद से हैं विभिन्न व्यवहार ॥ ३१३ ॥
सब का यह उद्देश है मूर्तिमंत हो धर्म ।
जीवन सातामय बने करें सभी सत्कर्म ॥ ३१४ ॥
धर्मप्राप्ति के ही लिये धार्मिक रीतिरिवाज ।

मन्दिर मसजिद चर्च में पूजा पाठ नमाज़ ॥ ३१५ ॥
धर्म प्राप्ति के ही लिये बनते तीर्थस्थान ।
अगर द्वेष बढ़ता वहां समझो उन्हें मसान ॥ ३१६ ॥
मन्दिर मसजिद चर्च का झूठा है सब ठाठ ।
अगर न इनसे पढ़ सके सत्यधर्म का पाठ ॥ ३१७ ॥
जेरुसलम मक्का गया काशी सब बेकार ।
अगर न इनसे पढ़ सके सत्यधर्म का सार ॥ ३१८ ॥

धर्मतीर्थों के भेद

धर्मतीर्थ कोई रहे रक्खो धर्मपर ध्यान ।
अगर धर्मपर ध्यान तो हैं सब तीर्थ समान ॥ ३१९ ॥
देशकाल के भेद से है तीर्थों में भेद ।
करो समन्वय बुद्धि से मिटजायेगा खेद ॥ ३२० ॥
धर्मतीर्थ पैदा हुए अपने युग अनुसार ।
उस युगका ही ध्यान रख उनका करो विचार ॥ ३२१ ॥
सभी सामयिक सत्य हैं पूर्ण न कोई धर्म ।
सबपर युग की छाप है सब युगहितके कर्म ॥ ३२२ ॥
देशकाल अनुसार सब करते हैं उपकार ।
सब के बनो कृतज्ञ तुम करो सभी से प्यार ॥ ३२३ ॥
अपना युग कुछ और है उनका था कुछ और ॥
इससे हुई विभिन्नता दो न द्वेष को ठौर ॥ ३२४ ॥
भिन्नभिन्न तब तीर्थ हैं भिन्नभिन्न जब लोग ।
भिन्नभिन्न औषध तभी भिन्नभिन्न जब रोग ॥ ३२५ ॥
अगर दूसरों की दवा तुमको नहीं पसन्द ।
तुम मतलो पर क्यों करो भाई भाई द्वंद । ३२६
यदि तुमको कोई दवा हितकर हुई न आज ।

तो भी क्या मालूम है कल हो उसका राज ॥ ३२७ ॥
जब जो भी अनुकूल हो उसको करो पसन्द ।
स्वत्वमोह को छोड़कर दूर हटाओ द्वंद ॥ ३२८ ॥
धर्मतीर्थ जो देसके करो उसीका गान ।
निन्दास्तुति झूठी न हो रहे सत्यपर ध्यान ॥ ३२९ ॥
अपने अपने तीर्थका करो न झूठा गान ।
परतीर्थों का द्वेषसे करो नहीं अपमान ॥ ३३० ॥
अपना यदि प्रतिकूल है करदो उसका त्याग ।
पर का यदि अनुकूल है दिखलाओ अनुराग ॥ ३३१ ॥
अपना परका कौन है झूठा सब अभिमान ।
था पैदा होते समय हमको किसका ज्ञान ॥ ३३२ ॥
जन्म समय हिन्दू न थे न थे मुसल्मा जैन ।
अहंकार की छापने किया हमें बेचैन ॥ ३३३ ॥
जिनमें हम पैदा हुए उनने मारी छाप ।
मज़हब कुछ पाये नहीं हमने अपनेआप ॥ ३३४ ॥
किनमें रहता पुण्य है किनमें रहता पाप ।
ढूंढे नहीं विचार कर हमनें माई बाप ॥ ३३५ ॥
सब के माई बाप हैं सबको है अभिमान ।
किसके सत्य असत्य हैं इसकी क्या पहिचान ॥ ३३६ ॥
मैं मैं हूं क्या इसलिये सब कुछ होता ठीक ।
तू तू है क्या इसलिये सब कुछ हुआ अलीक ॥ ३३७ ॥
एक दूसरे के लिये सभी करें 'तुंकार, ।
तू भी सब का 'तू' बना है घमंड बेकार ॥ ३३८ ॥
बालकपन के धर्म की करो न कुछ पर्वाह ।
सत्य सत्य ढूंढो सदा चलो सत्य की राह ॥ ३३९ ॥

बुद्धि वढी अनुभव बढ़ा करो ठीक उपयोग ।
समभावी नि-पक्ष बन करो ज्ञान का भोग ॥ ३४० ॥
अगर नहीं नि-पक्षता नहीं परीक्षाज्ञान ।
तो धर्मों के नाम का है झूठा अभिमान ॥ ३४१ ॥
अगर मिली निःपक्षता मिला परीक्षाज्ञान ।
तब समभावी बनगये कैसे हो अभिमान ॥ ३४२ ॥
समभावी है जनता सभी धर्म अनुकूल ।
पूर्ण सत्य कोई नहीं सभी जगह हैं शूल ॥ ३४३ ॥
तब किसका अभिमान हो किसका हो अरमान ।
मान अमान समान हो अहंकार बेजान ॥ ३४४ ॥
फूल फूल सब बीन लो छोडो सब के शूल ।
फूल और फल है वही जो जगहित अनुकूल ॥ ३४५ ॥

धर्मसमन्वय

तीर्थभिन्नता से कभी आने दो न विरोध ।
लो विभिन्नता का मजा यही सत्य की शोध ॥ ३४६ ॥
जब नाना व्यञ्जन मिलें खट्टे तीखे मिष्ट ।
भिन्न भिन्न रस थालमें तब भोजन स्वादिष्ट ॥ ३४७ ॥
यद्यपि घी बहुमूल्य है रस भी है भरपूर ।
पर केवल घी चाटना किसे सदा मंजूर ॥ ३४८ ॥
उपवन में खिलते जभी रंग विरंगे फूल ।
बढती है शोभा तभी उपवन मन अनुकूल ॥ ३४९ ॥
मिलकर सातों रंग जब होते एकाकार ।
स्वच्छ सफेद प्रकाश तब चमकाता संसार ॥ ३५० ॥
सब धर्मों के भिन्न हैं स्वाद रूप आकार ।
पर विवेक से खींचलो सब धर्मों का सार ॥ ३५१ ॥

धर्म पंथ या सभ्यता वेषाचार विचार ।
समभावी निष्पक्ष बन लो उन सब का सार ॥ ३५२ ॥
सब सत्यों के स्वाद के चखने का जो चाव ।
सारसमन्वयरूप यह सर्वधर्मसमभाव ॥ ३५३ ॥
सार समन्वय के लिये समझो सब का मर्म ।
कूड़ाकर्कट फेंककर देखो असली धर्म ॥ ३५४ ॥
घुसजाते हैं धर्म में, घर में अतिथिसमान ।
दर्शन या इतिहास के विषयों के व्याख्यान ॥ ३५५ ॥
इनको धर्म न मानना करना मत पर्वाह ।
अगर गवाही मिलसके करलो इन्हें गवाह ॥ ३५६ ॥
दर्शन या इतिहास की धर्म को न पर्वाह ।
हों जगके प्राणी सुखी इतनी ही है चाह ॥ ३५७ ॥
भिन्न भिन्न दर्शन रहें भिन्न भिन्न आचार ।
किन्तु समन्वय से हुआ एक सभी का सार ॥ ३५८
ईश अनीश विचार या द्वैताद्वैत विचार ।
आत्म अनात्म विचार या एक सभीका सार ॥ ३५९ ॥
दर्शन हो विज्ञान हो या खगोल इतिहास ।
देते जगको तथ्य सब, धर्म सत्य का दास ॥ ३६० ॥
सत्य तथ्य में भेद है सत्य करे कल्याण ।
तथ्य बताता वस्तुको हो कि न हो जगत्राण ॥ ३६१ ॥
तथ्यातथ्य विचार पर धर्म उपेक्षकदृष्टि ।
धर्म समन्वयदृष्टि से करे सत्यकी सृष्टि ॥ ३६२ ॥
जगमें जितने वाद हैं जितने हैं आचार ।
उनका सत् उपयोग क्या यही समन्वयसार ॥ ३६३ ॥

ईश्वरवाद समन्वय

ईश्वर है अथवा नहीं यह विवाद निःसार ।

ईश्वर से क्या लाभ है इसका करो विचार ॥ २६४ ॥
यदि मन में ईश्वर रहे स्वस्थ रहें सब लोग ।
समझें सब ही अटल है पुण्यपाप का भोग ॥ २६५ ॥
जगदीश्वर की आज्ञा कभी न टारी जाय ।
यह हुंडी ऐसी नहीं जो न सिकारी जाय ॥ २६६ ॥
मानव न्यायाधीश तो पद पद धोखा खाय ।
पर ईश्वरकी आंख में धूल न झोंकी जाय ॥ २६७ ॥
झूठी साक्षी से यहाँ न्याय हुआ बरबाद ।
ईश्वर के दर्बार, में ईश्वर स्वयं गवाह ॥ २६८ ॥
यहाँ अंधेरी रात के मिलते नहीं गवाह ।
अन्तर्यामी ईश को इसकी क्या पर्वाह ॥ २६९ ॥
अगर रहे एकान्त तो मिलते नहीं गवाह ।
घट घट व्यापी ईश को इसकी क्या पर्वाह ॥ २७० ॥
राजा आदिक स्वार्थवश करते हैं अन्याय ।
सर्वेश्वर भगवान पर क्यों स्वार्थी होजाय ॥ २७१ ॥
निर्बल न्यायाधीश तो डरकर न्याय गमाय ।
सर्वशक्तिमान ईश को भला कौन डरवाय ॥ २७२ ॥
मानव ने पकड़ा नहीं यदि मानव का हाथ ।
फिर भी कौन अनाथ जब ईश त्रिलोकीनाथ ॥ २७३ ॥
सत्यभक्त की जगत ने अगर न की पर्वाह ।
ईश्वर के दर्बार में रही उसी की चाह ॥ २७४ ॥
सत्यवक्ता असहाय बन दर दर फाँके धूल ।
पर ईश्वर के द्वार पर उसपर बरसें फूल ॥ २७५ ॥
जब कि निराशा घेरले बढ़े जगत का ताप ।
देता आश्वासन तभी ईश्वर माईबाप ॥ २७६ ॥

सत्यभक्त को जगत ने दी गालियाँ हजार।
पर ईश्वर ने प्रेमसे लिया उसे पुचकार ॥ ३७७ ॥
सत्यभक्त को जगत ने जब कि चढ़ाया कास।
ईश्वर माईबाप बन तब ही आया पास ॥ ३७८ ॥
सत्यभक्त हिजरत करे जब होकर असहाय।
तब ईश्वर रक्षक बने भक्त मदीना जाय ॥ ३७९ ॥
भक्त अकेला पड़गया रहा न कोई साथ।
तब ईश्वर ने प्यार से पकड़ा उसका हाथ ॥ ३८० ॥
विपदाएँ करने लगीं सभी ओर से चोट।
सत्यभक्त ने ली तभी सत्येश्वर की ओट ॥ ३८१ ॥
प्रलोभनों का जालले जब आया शैतान।
तब ईश्वर ने भक्त के खींचे दोनों कान ॥ ३८२ ॥
सारा लालच उड़गया हुआ भक्त को भान।
वह चौकन्ना बनगया हारगया शैतान ॥ ३८३ ॥
पापों का अवसर मिला खूब मिला एकान्त।
पर ईश्वर था देखता रहे पाप सब शान्त ॥ ३८४ ॥
ईश्वर जगमें है कहो इसका कौन प्रमाण।
पर घटघटवासी बना करता है कल्याण ॥ ३८५ ॥
जब कि धर्म निर्बल रहा रहा अधूरा त्राण।
तब मानव मन में हुआ ईश्वर का निर्माण ॥ ३८६ ॥
समझ न ईश्वर के लिये है जग का कल्याण।
है जनहित के ही लिये ईश्वर का निर्माण ॥ ३८७ ॥
तब ईश्वर होता सफल जब होता यह भान।
मानव मानव एक हैं ईश्वर की सन्तान ॥ ३८८ ॥
ईश्वरकी सन्तान को किया जगतने तंग।

तब ईश्वर के कोपसे हुआ रंग में भंग ॥ ३८९ ॥
जनहित में तत्पर रहो करो न कोई पाप ।
ईश्वर आता हाथ में तब अपने ही आप ॥ ३९० ॥
जगहितकी चिन्ता करो यह है उत्तम ध्यान ।
यदि जग की सेवा हुई पूजलिया भगवान ॥ ३९१ ॥
धर्ममूल ईश्वर नहीं जगहित ही है मूल ।
बिन जगहित ईश्वर जपा चाटी केवल धूल ॥ ३९२ ॥
धर्म न ईश्वर के लिये उसको है क्या चाह ।
अथवा उसकी चाह यह चलो प्रेमकी राह ॥ ३९३ ॥
पूजा भेंट नमाज से खुदा न खुश होपाय ।
करो चापलूसी भले खुदा न धोखा खाय ॥ ३९४ ॥
चिल्ला चिल्लाकर थको करो रातभर गान ।
पर ईश्वर के कान में तनिक न होगा भान ॥ ३९५ ॥
जब ईश्वर गुणगान का तुमको तनिक न मान ।
कैसे आयेगा भला तब ईश्वर का ध्यान ॥ ३९६ ॥
गाल फुलाये रातभर करली नींद हराम ।
पर मन सोता ही रहा पड़ा पाप के धाम ॥ ३९७ ॥
जीवन में आये नहीं सेवा या ईमान ।
तब आया किस काम में ईश्वर का गुणगान ॥ ३९८ ॥
किया न प्रायश्चित्त जब आत्मा हुआ न बुद्ध ।
पाप छूटेंगे किस तरह हृदय नहीं जब शुद्ध ॥ ३९९ ॥
गॉड न कर सकता कभी पाप किसी के माफ ।
माफी देना पाप की पक्षपात है साफ ॥ ४०० ॥
भेंट चढ़ाने से अगर पापमुक्त हो चोर ।
तब तो ईश्वर ही बने पापी रिश्वतखोर ॥ ४०१ ॥

पूजा भेंट नमाज सब हैं न धर्म के कर्म ।
धर्म प्रेम है न्याय है, जग सेवा है धर्म ॥ ४०२ ॥
पूजा भेंट नमाज के करने का न विरोध ।
पर समझो उद्देश यह 'हो कर्तव्य सुबोध ॥ ४०३ ॥
यदि ईश्वर के जाप से निकला मन का पाप ।
लौटा हृदय कुराहसे सफल हुआ तब जाप ॥ ४०४ ॥
सच्चा ईश्वरवाद यह खूब बढ़े सहयोग ।
पाप घटे हिम्मत रहे बनें सुखी सब लोग ॥ ४०२ ॥

गीत

यही है सच्चा ईश्वरवाद
संकट में जो साहस लाता ।
पुण्यकार्य से प्रेम बढ़ाता ॥
अगर पाप का अवसर आता ।
आता ईश्वर याद ।
यही है सच्चा ईश्वरवाद ॥ ४०६ ॥
अंधकार हो या उजयाला ।
पर जो सदा देखनेवाला ।
पड़ने दे न पाप से पाला ।
देता अन्तर्नाद ।
यही है सच्चा ईश्वरवाद ॥ ४०७ ॥
आई जब संकट की वेला ।
जीवन जब रहगया अकेला ।
तब जो भक्त हृदय में खेला ।
दिया भक्ति का स्वाद ।
यही है सच्चा ईश्वरवाद ॥ ४०८ ॥

अनीश्वरवाद समन्वय

जगकर्ता ईश्वर नहीं यह जिनका विश्वास ।

वे भी आस्तिक हैं, अगर—रहें सत्य के दास। ४०९।
यह सारा संसार है प्रकृति नटी का खेल।
जीवन का सुख दुःख से खेल खेल में मेल ॥ ४१० ॥
नियम नियन्त्री है प्रकृति है न कहीं भगवान।
तुमको सुख की चाह तो रखो नियम पर ध्यान ॥ ४११ ॥
यहा लाच रिश्वत नहीं पाप न होते माफ।
करनी भरनी एक सी प्रकृति नियम है साफ। ४१२।
पुण्य न होता है विफल विफल न होता पाप।
पुण्यपाप फलते यहा सब अपने ही आप। ४१३।
कोई देखे या नहीं अमित प्रकृति का दंड।
विष खाने से मौत है यह है नियम प्रचंड। ४१४।
'विष खाया है किस जगह इसका कौन गवाह।'
ऐसी बातों की कभी प्रकृति को न पर्वाह ॥ ४१५ ॥
नियम प्रकृति के हैं अटल वह है खुदमुख्तार।
होते जग के काम सब नियमों के अनुसार ॥ ४१६ ॥
रक्खो कारणकार्य की परम्परा का ध्यान।
अनुभव से होजायगा प्रकृति नियम-विज्ञान ॥ ४१७ ॥
रहती है इस ज्ञान से कर्तव्यों की याद।
बने व्यवस्था धर्म की यही अनीश्वरवाद ॥ ४१८ ॥
जहा अनीश्वरवाद यह वहा न रहता पाप।
तम में किया अपथ्य तो सहना होगा ताप ॥ ४१९ ॥
है न अनीश्वरवाद में पुण्यपाप बेकार।
सिर्फ व्यवस्था है जुदी तर्कों के अनुसार ॥ ४२० ॥
बुद्धि यहा सन्तुष्ट है तुष्ट यहां विज्ञान।
कर्तव्यों पर ही सदा रहता सबका ध्यान ॥ ४२१ ॥

पूर्ण स्वावलम्बन यहां स्वतन्त्रता का धाम ।
किसी देवता को नहीं खुश करने का काम ॥ ४२२ ॥
भक्ति प्रार्थना का यहां इतना ही उपयोग ।
समझें बूझें देखलें धर्म-नियम सब लोग ॥ ४२३ ॥
सत्येश्वर के भक्त जो तीर्थंकर अवतार ।
वे पथदर्शक जगत के करते हैं उपकार ॥ ४२४ ॥
उनका जीवन देखकर करो हितकर कर्म ।
विघ्न प्रलोभन जीतलो मूर्तिमंत हो धर्म ॥ ४२५ ॥
उनसे कभी न मागना धन वैभव सन्मान ।
तीर्थंकर ईश्वर नहीं रक्खो इसका ध्यान ॥ ४२६ ॥
तीर्थंकर ईश्वर बना धर्म हुआ बर्बाद ।
बुद्धि तर्क सब लुटगये लुटा अनीश्वरवाद ॥ ४२७ ॥
झूठे अतिशय आगये महामोह के भृत्य ।
हुआ अन्ध विश्वास का डटकर ताडव नृत्य ॥ ४२८ ॥
झूठे अतिशय लादना सबसे बुरा मजाक ।
हुआ अनीश्वरवाद या बुद्धिवाद सब खाक ॥ ४२९ ॥
शुद्ध दूध सा रक्त या देवागम नभयान ।
ऐसे अतिशय मानते मिथ्यात्वी नादान ॥ ४३० ॥
सुन्दर तन तनबल विभव कुल कुटुम्ब अधिकार ।
हैं तीर्थंकर के लिये ये अतिशय बेकार ॥ ४३१ ॥
ये सारे मूढातिशय नष्ट करें उत्साह ।
मानव दीन न चलसके तीर्थंकर की राह ॥ ४३२ ॥
मनमें आई दीनता मानव करे विचार ।
"हममें वे अतिशय नहीं कैसे हो उद्धार ॥ ४३३ ॥
हम अतिशय कंगाल हैं तीर्थंकर हैं शाह ।

तब कैसे हम चलसकें तीर्थंकर की राह ॥ ४३४ ॥
करें तपस्या किस तरह बने किस तरह सन्त ।
सत्यभक्त कैसे बनें जिन योगी अर्हंत ॥ ४३५ ॥
जगत निराशा में पड़ा टूट गया उत्साह ।
जडता में ऐसा फसा मिली न कोई राह ॥ ४३६ ॥
छोडो ये मूढ़ातिशय छोड़ो यह अविवेक ।
आत्मबुद्धि पर ध्यान दो अतिशय वहां अनेक ॥४३७॥
सच्चा अतिशय है यही बनो सत्य के भक्त ।
निस्पृह ज्ञानी संयमी सेवामें अनुरक्त ॥ ४३८ ॥
सत्पथमें दृढ़ता रखो मान हो कि अपमान ।
विघ्न प्रलोभन जीतलो अतिशय यही महान ॥ ४३९ ॥
बिछुड़ जायँ साथी सभी फिर भी करो न शोक ।
सारा जग उल्टे मगर खडे रहो खम ठोक ॥ ४४० ॥
असफलताएँ कर सकें जिसका हृदय न चूर ।
सत्यभक्त अतिशय-धनी वह दुनिया का नूर ॥ ४४१ ॥
ये ही अतिशय सत्य हैं करो इन्हीं का मान ।
इनको ही पाकर बढ़ो सच्चे बनो महान ॥ ४४२ ॥
बुद्धि तर्क को हासके इनसे ही सन्तोष ।
इनके दृढ़ विश्वास से जीवन हो निर्दोष ॥ ४४३ ॥
अगर अनीश्वरवाद में हो अतिशय का जाल ।
बने अनीश्वरवाद तब तर्कहीन कंगाल ॥ ४४४ ॥
ईश्वर भी पाया नहीं हुआ अनीश्वर नष्ट ।
दोष दोष पल्ले पडे हुए उभयतोभ्रष्ट ॥ ४४५ ॥
रखो अनीश्वरवाद पर छोडो अन्धविचार ।
तर्क और प्रत्यक्ष से पढलो यह संसार ॥ ४४६ ॥

प्रकृति नियम सब जानलो अच्छे बुरे निदान ।
बुरे बुरे सब छोड़दो दो अच्छों पर ध्यान ॥ ४४७ ॥
क्षमा की न आशा करो सँभलो अपने आप ।
सच्चे प्रायश्चित्त से दूर हटाओ पाप ॥ ४४८ ॥
सत्यभक्त बन सत्य के पथमें करो प्रयाण ।
यही अनीश्वरवाद सच इससे जग कल्याण ॥ ४४९ ॥
अगर अनीश्वरवाद से हो स्वच्छन्दाचार ।
तथ्य असत्य बने तभी जग हो दु:खागार ॥ ४५० ॥
नियम नियन्त्रण नष्ट हों जगत बने अनुदार ।
अपने अपने स्वार्थमें डूब मरे संसार ॥ ४५१ ॥
सामूहिक उन्नति न हो हो न सके सहयोग ।
घूमें स्वार्थोन्माद में पागल से सब लोग ॥ ४५२ ॥
रह न सके विश्वास तब रह न सके तब प्यार ।
सभी शिकारी से बने सब का करें शिकार ॥ ४५३ ॥
यह न अनीश्वरवाद है यह न तर्क का काम ।
यह अनुभव का फल नहीं यह पशुता का धाम ॥ ४५४ ॥
अनुभव तर्क विवेक का करो खूब उपयोग ।
स्वार्थोन्माद न हो मगर न हो निरर्गल भोग ॥ ४५५ ॥
ईश्वर मिटता है मिटे इसकी क्या पर्वाह ।
किन्तु सत्य को भूलकर बनो नहीं गुमराह ॥ ४५६ ॥
पूर्ण स्वावलम्बन रहे किन्तु न हो उन्माद ।
सत्य अहिंसा भक्ति हो यही अनीश्वरवाद ॥ ४५७ ॥

आत्मवाद समन्वय

यह तो सब ही मानते आत्मा चेतनधाम ।
जो सुख दुख अनुभव करे उसका आत्मा नाम ॥ ४५८ ॥

आत्मवाद का अर्थ यह आत्मा है अविनाश।
पुण्यपाप निष्फल नहीं क्यों हम बने निराश॥ ४५९॥
फटे पुराने वस्त्रसा छूटा अगर शरीर।
तो मिलता है दूसरा क्यों मरने की पीर॥ ४६०॥
यहां अगर दिखता तुम्हें पुण्य कर्म बेकार।
तो मरने पर देखना पुण्य सुखों का सार॥ ४६१॥
यहां न मिलपाया अगर पाप कर्म का दंड।
तो अवश्य है भोगना मरकर दंड प्रचंड॥ ४६२॥
जैसे करते कर्म हो जैसे रहे विचार।
वैसा ही मिलता तुम्हें मरने पर अवतार॥ ४६३॥
प्रकृति नियम हो या कि हो ईश्वर का दरबार।
पुण्यपाप फलते सदा करनी के अनुसार॥ ४६४॥
पुण्य न निष्फल जान तू पाप न निष्फल जान।
मरने पर परलोक है रखना इसका ध्यान॥ ४६५॥
यहां सबल निर्बल वहां राजा बनते रंक।
यह नाटक पूरा नहीं किन्तु एक ही अंक॥ ४६६॥
एक अंक यह देखकर मत होना दिलगीर।
पर्दा उठने दो जरा मिटजायेगी पीर॥ ४६७॥
एक अंक में जो तुम्हें लगता है अन्धेर।
मिटजाता वह अन्तमें भले लगे कुछ देर॥ ४६८॥
जो पशुबल पाकर करें जग पर अत्याचार।
उनपर बरसेगी वहां यमदूतों की मार॥ ४६९॥
बनते हैं श्रीमान जो कर करके सब पाप।
मरकर भोगेंगे वहां सब पापों का ताप॥ ॥ ४७०॥
छल कर अधिकारी बनें करें वृथा अभिमान।

मरने पर बन जायँगे गली गली के श्वान ॥ ४७१ ॥

जनता की इच्छा बिना जो करते हैं राज ।
वे मरकर घोड़े बन मिलें सवारी साज ॥ ४७२ ॥

बने धर्मगुरु दम्भ से जो ठगते संसार ।
मीन बनें फँस जाल में पायें छौंक बघार ॥ ४७३ ॥

तोप टेंक बम का करें जो हिंसक व्यापार ।
उन्हें बहा लेजायगी वैतरणी की धार ॥ ४७४ ॥

जो गुंडा बनकर करें पलपल मारामार ।
तांगे के टट्टू बनें हंटर पड़ें हजार ॥ ४७५ ॥

करते हैं जो स्वार्थवश हत्या लूटामार ॥
जन्म जन्म बकरा बनें मिले छुरी की धार ॥ ४७६ ॥

करते हैं जो लिंचसे मानवतन को खाक ।
उबलेंगे वे रातदिन पडकर कुम्भीपाक ॥ ४७७ ॥

मुफ्तखोर लोभी यहा जो बनते हैं चोर ।
मरकर जुतते रातदिन बने किसी के ढोर ॥ ४७८ ॥

अन्न वस्त्र संग्रह करें करें चोर बाजार ।
मरकर वे चूहे बने बिल्ली करे शिकार ॥ ४७९ ॥

झूठी भिक्षा मागकर मुफ्तखोर बनजायँ ।
वे मरकर गर्धव बनें लद लद हंटर खायँ ॥ ४८० ॥

जो अपने कर्तव्य को समझा करें बलाय ।
कौए की मादा बने कोयलशिशु की धाय ॥ ४८१ ॥

सत्य नहीं जो बोलते करते मायाचार ।
मरकर चमगीदड बनें उल्टे लटकें यार ॥ ४८२ ॥

जो पर को करते फिरें झूठा ही बदनाम ।
वे मरकर कीड़े बने गटर बनायें धाम ॥ ४८३ ॥

सत्य छिपाते रातदिन करके टालमटोल ।
मरकर वे गूंगे बने निकले तनिक न बोल ॥ ४८४ ॥
जो न सत्य को सुन सकें दें न सत्य पर ध्यान ।
वे मरकर बहिरे बनें लटकें कोरे कान ॥ ४८५ ॥
न्यायी का बैरी बने सह न सके जो न्याय ।
बन करके जन्मांध वह दुनिया देख न पाय ॥ ४८६ ॥
जो हरामखोरी करें चलें न सीधी गैल ।
मरने पर बनजायँगे वे कोल्हू के बैल ॥ ४८७ ॥
दम्पति जीवन नष्ट कर करते जो व्यभिचार ।
खाते हैं परलोक में बधिया होकर मार ॥ ४८८ ॥
अतिपरिग्रही जो बनें ग्रथ भरें भण्डार ।
मक्खी बन जोड़ें शहद शहद लुटे हर बार ॥ ४८९ ॥
अतिलोभी स्वादान् जो हैं विषयों में लीन ।
तड़पेंगे वे रातदिन जैसे जल बिन मीन ॥ ४९० ॥
बीड़ी आदिक जो पियें व्यसनी निपट अधीर ।
मरकर वे पाते नहीं कोई स्वस्थ शरीर ॥ ४९१ ॥
जिनको व्यसन शराब का रहें नशे में चूर ।
मरकर वे पागल बनें सरस्वती से दूर ॥ ४९२ ॥
रहें अन्धश्रद्धालु जो मानें नहीं सुधार ।
मरकर बनते झाड़ वे जड़ता के भण्डार ॥ ४९३ ॥
करें धर्म के नामपर जो पशु को कुर्बान ।
वे मरकर बनते रहें जन्म जन्म हैवान ॥ ४९४ ॥
अपने स्वार्थों के लिये फैलाते जो फूट ।
खन्ड खन्ड होजायँगे अंग अंग सब टूट ॥ ४९५ ॥
पंच बने जो छीनते नारी के अधिकार ।

वे मरकर मुर्गी बनें अन्डे छिने हजार ॥ ४९६ ॥
रखते जो पुरुषत्व मद कर नारी अपमान ।
मरें नपुंसक वे बनें पा न सकें सन्मान ॥ ४९७ ॥
जिनके सिर पर है चढ़ा जातिपाति का भूत ।
वे मरकर शूकर बने सब से बड़े अछूत ॥ ४९८ ॥
रंगभेद के नामपर जो घमन्ड दिखलायँ ।
वे काले कौए बने गन्दी चीजें खायँ ॥ ४९९ ॥
करते जो अभिमान वश सज्जन का अपमान ।
वे धुतकारे जायँगे बनकर सड़ियल श्वान ॥ ५००
जो कृतज्ञता छोड़कर भूलें पर उपकार ।
वे निशदिन लुटते रहें ऐसे बनें गमार ॥ ५०१ ॥
गुरुजन सेवा भूलकर बनें स्वार्थ में लीन ।
वे अनाथ बन भटकते बेइज्जत अतिदीन ॥ ५०२ ॥
विनय न गुरुजन का करें भूलें शिष्टाचार ।
वे मूरख हैवान बन करते हैं बेगार ॥ ५०३ ॥
वैसा फल मिलता वहां जैसा होता पाप ।
पापों से अगणित गुणा होता उनका ताप ॥ ५०४ ॥
जैसा होता पुण्य है वैसा ही सुखभोग ।
मरने पर परलोक में पाते हैं सब लोग ॥ ५०५ ॥
सत्कुटुम्ब सद्बुद्धि मन सुन्दर स्वस्थ शरीर ।
इन्द्रिय बल वाणी सरस हृदय धीर गम्भीर ॥ ५०६ ॥
दीर्घ आयु बलवान तन देश परम अनुकूल ।
पुण्यात्मा पाते वहां सब साधन सुखमूल ॥ ५०७ ॥
पुण्यपाप निष्फल नहीं उनका फल भरपूर ।
मिल न सका यदि फल यहां मिलता वहां जरूर ॥ ५०८ ॥

ईश्वर हो या प्रकृति हो दोनों का यह कार्य ।
पुण्यपाप अनुसार हो सुफल कुफल अनिवार्य ॥ ५०९ ॥
ईश्वर अथवा प्रकृति ही रखते यह अधिकार ।
पापी को परलोक में देना कैसी मार ॥ ५१० ॥
पूर्व जन्म के पाप का कोमल या कि प्रचंड ।
ईश्वर अथवा प्रकृति ही दे सकते हैं दण्ड ॥ ५११ ॥
मानव अगर अदृष्ट फल देने का लगजाय ।
तो वह खुद पापी बने खुद ही गोता खाय ॥ ५१२ ॥
पूर्व जन्म के पापका मानव को क्या ज्ञान ।
वह तो अपने स्वार्थ का करता रहता ध्यान ॥ ५१३ ॥
जब न जानकारी उसे हृदय नहीं निःस्वार्थ ।
कैसे होगा दण्ड तब न्यायपूर्ण परमार्थ ॥ ५१४ ॥
पूर्व जन्मके नामसे करो न दुर्व्यवहार ।
इसी जन्म के कर्म का करते रहो विचार ॥ ५१५ ॥
तुम तो उपकारी बनो पालो अपना धर्म ।
देंगे अपना फल स्वयं पूर्व जन्म के कर्म ॥ ५१६ ॥
तुम अपने कर्तव्य के पूरे जिम्मेदार ।
पुण्यपाप निष्फल नहीं आत्मवाद का सार ॥ ५१७ ॥
धर्म सदा करते रहो चलो सत्यकी राह ।
जग देखे अथवा नहीं करो न कुछ पर्वाह ॥ ५१८ ॥
आत्मा नित्य अनित्य या इसका झगडा व्यर्थ ।
करनी भरनी एकसी आत्मवाद का अर्थ ॥ ५१९ ॥
स्वानुभूतिसे होगया यदि आत्मा का भान ।
दर्शन के झगड़े मिटे पाया सम्यग्ज्ञान ॥ ५२० ॥
करनी-भरनी का हुआ अगर तुम्हें विश्वास ।

सर्व्य जाय अथवा रहे सत्य तुम्हारे पास ॥ ५२१ ॥
आत्मवाद कहता यही सँभलो अपने आप ।
जग देखे अथवा नहीं करो न तिलभर पाप ॥ ५२२ ॥

गीत

तेरी अमर कहानी। प्रानी, तेरी अमर कहानी।
क्षणभगुर जीवन मे भूला क्यो करता नादानी ॥
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२३ ॥
तूने नाना वेष बनाये ।
नये नये जीवन कहलाये ॥
नव जीवन की मूल मौत यह जिसमे आनाकानी ।
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२४ ॥
कभी हुआ तू नर अवतारी ।
कभी हुआ नारी-तन धारी ॥
राजा रंक, असुन्दर सुन्दर, दासी चेटी रानी ।
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२५ ॥
आसमानमें जलमें थलमें ।
ग्राम नगर अटवी जंगल मे ॥
अगणित सौर जगत में घूमा कण कण दुनिया छानी
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२६ ॥
घड़ी घड़ी में पहर पहर मे ।
जीवन बदले लहर लहर में ॥
लहर लहर में व्यापक है तू ज्यों दरिया का पानी ।
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२७ ॥
अखिल विश्व तेरा रंगस्थल ।
मंगलमय नटनटियों का दल ॥
इस अनन्त नाटक की नाटकता किसने पहिचानी ।
प्रानी तेरी अमर कहानी ॥ ५२८ ॥

अनात्मवाद समन्वय

गीत

कैसी यह दूकान । पुजारी, कैसी यह दूकान ।
जग को सुना रहा है झूठे परलोकों के गान ॥
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५२६ ॥
पुरखों की तू बातें करता ।
अपना पेट मुफ्त में भरता ।
कोई मरे जिये मिट जाये सब में तेरी शान ।
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३० ॥
श्रम के अवसर पर भगजाना ।
उदासीन बन मौज उड़ाना ॥
समझा 'करना' पाप किन्तु 'खाना' है पुण्य पुरान ।
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३१ ॥
ठगियों को तू आशिष देता ।
लूटमार में हिस्सा लेता ॥
लुटे जगत से कहता-'इसको, पूर्व कर्म फल जान',
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३२ ॥
जग को लूट लूट सब लेता ।
दैववाद का प्याला देता ॥
तेरी यह शराब पी-पीकर जग भूला है भान ।
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३३ ॥
तेरा बुरा शराबी धन्धा ।
जगको करता पागल अन्धा ॥
सबको तू परलोक बताता खुद न तुझे पर ध्यान ।
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३४ ॥
स्वर्ग मोक्ष का गाना गाता।
जड़ता के सब राग सुनाता ।

अकर्मण्य अध्यात्मवाद की छेड रहा तू तान ॥
पुजारी, कैसी यह दूकान ॥ ५३५ ॥
वह बहिश्त वह स्वर्ग यही है।
वह अगम्य अपवर्ग यहीं है ॥
बने नया संसार आदमी करे सुधा का पान।
पुजारी कैसी यह दूकान ॥ ५३६ ॥
आत्मवाद के नाम पर हैं जितने अन्धेर ।
पोल खोल, कर दो उन्हें मार मार कर ढेर ॥ ५३७ ॥
फैले हैं संसार में घोर अन्धविश्वास ।
जिनसे मानव जग हुआ जड़ता का आवास ॥ ५३८ ॥
दूर करो विज्ञान से सकल अन्धविश्वास ।
जिससे मानवता बढ़े मिटें हजारों त्रास ॥ ५३९ ॥
आत्मवाद के नामपर फैले भूत पिशाच ।
घर घर घट घट में भरे करते नंगा नाच ॥ ५४० ॥
पितर लोक के नाम पर खूब हुआ आखेट ।
पारसलों से भरगये सब पंडों के पेट ॥ ५४१ ॥
पुरखे तो मरकर मिटे लुटकर मिटे सपूत ।
टिड्डीदल से छागये आत्मवाद के भूत ॥ ५४२ ॥
घर सब चौपट होगया उजड़गया सब बाग ।
रोने का निकला यहां एक नया ही राग ॥ ५४३ ॥
पुरखों का दुख ढकगया बढा नया ही त्रास ।
लुटने के दुखदर्द से उठे दीर्घ निश्वास ॥ ५४४
पितर-लोक या स्वर्ग की बात हुई सब दूर ।
रोटी के लाले पड़े हुई जिन्दगी चूर ॥ ५४५ ॥
आत्मवाद ने जब किया इस जग को हैवान ।
तब अनात्म के वाद ने दिया जगत को ज्ञान ॥ ५४६ ॥

बोल उठा वह गर्जकर छोड़ो सब बेगार ।
झूठे सपने छोड़दो देखो यह संसार ॥ ५४७ ॥
स्वर्ग नरक वैकुंठ की बातें हैं सब व्यर्थ ।
स्वर्ग नरक ईश्वर बने इस दुनिया के अर्थ ॥ ५४८ ॥
यह दुनिया हो स्वर्ग सी यहीं बसे अपवर्ग ।
सदा यत्न ऐसा करो ललचाजाये स्वर्ग ॥ ५४९ ॥
झूठा वह अध्यात्म है जिसमें मायाचार ।
दम्भी लेते हैं जहां दुनिया से बेगार ॥ ५५० ॥
झूठा वह अध्यात्म है जहां भरी है लूट ।
भीतर ही भीतर जहां भरी हुई है फूट ॥ ५५१ ॥
झूठा वह अध्यात्म है जिसमें वृथा विराग ।
अकर्मण्यता ही जहां कहलाती है त्याग ॥ ५५२ ॥
झूठा वह अध्यात्म है जो करता बेगार ।
एक तरह का वह नशा स्वपर-वंचनागार ॥ ५५३ ॥
इस दुनिया से भागना है दाम्भिक आचार ।
भागोगे तुम किस जगह सभी जगह संसार ॥ ५५४ ॥
'आतम आतम' का जाप है परम निरर्थक जाप ।
काम करो मिलजायगा आतमा अपने आप ॥ ५५५ ॥
दुनिया की उन्नति करो करो न हृदय निराश ।
जहां निराशा है वहां चलती फिरती लाश ॥ ५५६ ॥
जीवनमें ईमान हो कर्मशीलता प्यार ।
मानव एक कुटुम्ब हो बने नया संसार ॥ ५५७ ॥
सत्य अहिंसा का यहां घर घर में हो राज ।
द्वार द्वार पर प्यार हो जग हो सत्यसमाज ॥ ५५८ ॥

देश देश जन्नत बने गाव गाव हों स्वर्ग।
घर घर में वैकुण्ठ हो घर घर में अपवर्ग ॥ ५५९ ॥
जो अनात्मवादी बना उसका यह कर्तव्य।
यह जीवन सुखमय बने सर्व हितंकर भव्य ॥ ५६० ॥

द्वैताद्वैत

जगत मूल में एक है या हैं तत्व अनेक।
यह जीवन की दृष्टि से चर्चा का अतिरेक ॥ ५६१ ॥
रहे मूल में द्वैत ही फिर भी क्या पर्वाह।
एक दूसरे की सदा करते हैं सब चाह ॥ ५६२ ॥
आत्मा और शरीर का है अनुपम संयोग।
इस अनुपम संयोग से होते सुखदुख-भोग ॥ ५६३ ॥
तत्वों के सम्मिलन से बना हुआ संसार।
सब तत्वों के द्वैत में है अद्वैताचार ॥ ५६४ ॥
अगर सृष्टि के मूल में भरा एक ही तत्त्व।
तो भी दुखसुख भोगते भिन्न भिन्न सब सत्व ॥ ५६५॥
एक ब्रम्ह ही बनरहा बध्य बधकका मूल।
तो भी हिंसकता नहीं जीवन के अनुकूल ॥ ५६६ ॥
है सुखदुख के मूल में एक चेतना तत्व।
तो भी सुख को छोड़कर दु ख न चाहें सत्व ॥ ५६७ ॥
तत्वों के अद्वैत से तब क्या निकला सार।
दुखसुखरूप विभिन्न जब भिन्न भिन्न आधार ॥ ५६८ ॥
पेट हमारा भर गया पर भूखे सब लोग।
तब आया किस काम में तत्वाद्वैत प्रयोग ॥ ५६९ ॥
अन्न वस्त्र से शून्य हो अगर हमारा धाम।
'ब्रम्ह सत्य मिथ्या जगत्' आयेगा किस काम ॥ ५७० ॥
पेट हमारा हो भरा खूब भरा भंडार।

तब ही आता याद है झूठा यह संसार ॥ ५७१ ॥
झूठा सब संसार हो मगर न झूठा पेट।
इसी पेट के ही लिये हैं निशदिन आखेट ॥ ५७२ ॥
' माया माया ' मत बको क्रियाशील सब द्रव्य।
देखो आंख पसार कर, करो सदा कर्तव्य ॥ ५७३ ॥
माया कहना ठीक तब. छोड़ो अपना स्वार्थ।
पर के स्वार्थों में रमो चमक उठे परमार्थ ॥ ५७४ ॥
दुनिया भले अनित्य हो हाँ अनित्य सब द्रव्य।
फिर भी तुम भूलो नहीं निज अनित्य कर्तव्य ॥ ५७५ ॥
हो माया के नाम से नित्यानित्य-विचार।
किन्तु कभी मत भूलना सदाचार सुविचार ॥ ५७६ ॥
द्वैताद्वैत विचार पर पड़ी धर्म की दृष्टि।
परम समन्वय होगया हुई सत्य की सृष्टि ॥ ५७७ ॥

द्वैत समन्वय

गीत

तू द्वैतवाद का मर्म समझले भानी।
बनजा विवेक का धाम भेदविज्ञानी ॥ ५८८ ॥
तू है शरीर से जुदा ज्ञान रत्नाकर।
जड़ है शरीर तू चेतनता का आकर।
है इस शरीरमें चमक तुझी को पाकर।
ये सकल इन्द्रियाँ हैं तेरी ही चाकर।
तू राजा तन का धनी बुद्धि है रानी।
बनजा विवेक का धाम भेदविज्ञानी ॥ ५८९ ॥
तू तो है पावन किंतु अपावन काया।
क्यों हाड़ मांस की माया में भरमाया।
है यह सुन्दरता चार दिनों की छाया।

पाकर शरीर बल क्यों इतना इतराया ॥
क्यों हाड़ मास के लिये बना अभिमानी ।
बनजा विवेक का धाम भेदविज्ञानी ॥ ५८० ॥
तू जलचर थलचर कभी कभी नभचारी।
तू बनता राजा कभी कभी बेगारी।
तू नरतनधारी कभी कभी है नारी।
फिर भी तेरी गति है इन सब से न्यारी॥
आनन्द-कंद सच्चिदानन्द तू ज्ञानी ।
तू द्वैतवाद का मर्म समझले प्रानी ॥ ५८१ ॥
ये सारे विषय विकार पाप की छाया।
मेरे तेरे का भाव मोह की माया ।
तन की प्यासों को तूने बहुत बुझाया ।
बीते अनत तन पार न लेकिन पाया ॥
होजा स्वतन्त्र तू मुक्तिधनी निजध्यानी।
बनजा विवेक का धाम भेदविज्ञानी ।५८२।

दोहा

अंगी अंग जुदे जुदे यही भेदविज्ञान ।
धर्मशास्त्र का द्वैत है रख तू इसका ध्यान ॥ ५८३ ॥
जहा भेदविज्ञान है वहा न रहता पाप ।
आतमा क्यों तन के लिये सहने बैठे ताप ॥ ५८४ ॥
द्वैतवाद का रूप है यही भेद विज्ञान ।
है उससे सब का भला है यह सत्य महान ॥ ५८५ ॥

अद्वैत समन्वय

सब के हित में आत्महित एक कुटुम्ब समान ।
यही परम अद्वैत है यही ब्रम्ह विज्ञान ॥ ५८६ ॥
पर के हितमें देख तू अपने हित का सार।

यही परम अद्वैत है आत्मौपम्य विचार ॥ ५८७ ॥
जग के हित की है नहीं अगर तुझे पर्वाह ।
तो रक्खे जग किसलिये तेरे हित की चाह ॥ ५८८ ॥
अपने अपने स्वार्थ में रहें सकल जन लीन ।
तो सब ही कंगाल हों निःसहाय अतिदीन ॥ ५८९ ॥
जितना ही अद्वैत हो जितना ही सहयोग ।
उतना ही सब जगत में बढ़े सुखों का भोग ॥ ५९० ॥
बढ़ता है सहयोग जब बढ़ता है अद्वंद ।
गुणाकार के रूप में तब बढ़ता आनन्द ॥ ५९१ ॥
एक एक से एक है, दो से दो हैं चार ।
तीन तीन से नव हुए, सुख है वर्गागार ॥ ५९२ ॥
मैं तू में अद्वैत है सब का सुख है एक ।
निजसुख परसुख मे सदा है अन्वय-व्यतिरेक ॥ ५९३ ॥
जब 'मैं मैं' 'तू तू' जपा तब जग नरक समान ।
जब 'मैं तू' 'तू मैं' जपा तब जग स्वर्ग समान । ५९४ ।
वह सच्चा अद्वैत जो विश्वप्रेम का रंग ।
अंग अंग में रम रहा प्रेम विश्व के संग । ५९५ ।
जहा परम निष्पक्षता विश्व-हितंकर दृष्टि ।
द्रोह मोह जिसमें नहीं वह अद्वैती सृष्टि । ५९६ ।
वही परम अद्वैत है उपयोगी अभ्रात ।
उसपर न्योछावर करो सब का सब वेदान्त ॥ ५९७ ॥

गीत

यह अद्वैत महान । दार्शनिक, यह अद्वैत महान ।
है यह प्रेम निधान । दार्शनिक, यह अद्वैत महान ।५९८।
भेदभाव का हुआ जहा क्षय ।
स्वार्थ और परमार्थ समन्वय ॥

घर घर में घट घट में होने लगा प्रेम का गान।
दार्शनिक, यह अद्वैत महान ॥ ५९९ ॥
जग के हितमें अपना हित है।
तत्व एकता यहा अमित है ॥
ऋषि महर्षि वेदान्ती जन का है यह तत्वज्ञान।
दार्शनिक, यह अद्वैत महान ॥ ६०० ॥
विश्व-प्रेम सद्ब्रह्म कहाया ।
द्रोह मोह ममता है माया ॥
मायाहीन हृदय करके तू लगा ब्रह्ममें ध्यान।
दार्शनिक, यह अद्वैत महान ॥ ६०१ ॥

मुक्ति अमुक्ति

मुक्तिवाद

मुक्तिवाद का अर्थ यह आतमा हो अशरीर ।
छूट जाय भव-भ्रमण से मिटे सदा की पीर ॥ ६०२ ॥
वास करे वैकुण्ठ में बने ब्रह्म में लीन ।
या पहुँचे लोकान्तमें पुरुषाकृति तनहीन ॥ ६०३ ॥
ऊर्ध्व-गमन हो सर्वदा बीते काल अनन्त ।
दीपक सा बुझजाय या हो दुःखों का अन्त ॥ ६०४ ॥
पारलौकिकी मुक्ति यह होती सादि अनन्त ।
जिसको पाते बुद्ध जिन योगी या अर्हन्त ॥ ६०५ ॥
पारलौकिकी मुक्ति का है न किसी को भान ।
मन मन की है कल्पना मन मन का है ज्ञान ॥ ६०६ ॥
मतविभिन्नता मूल वह वह परोक्ष अत्यन्त ।
पर इसमें सब एकमत वहा दुःख का अन्त ॥ ६०७ ॥
सब दुःखों से मुक्ति हो यही सभी की चाह ।
सुख पायें अथवा नहीं इस की क्या पर्वाह ॥ ६०८ ॥

है जग के आनन्द में दुःखों की भरमार ।
जब कि दुःख सुख हैं मिले तब सुख है बेकार ॥ ६०९ ॥
कणभर मीठे के लिये कड़ुए की भरमार ।
जग सुख समझो चाटना शहद-लपेटी धार ॥ ६१० ॥
सुख है राईसा यहां दुख है मेरु-समान ।
इसीलिये ही मुक्ति का करते हैं सब ध्यान ॥ ६११ ॥
परम निराकुलता वहां परम शान्ति का राज ।
आत्मा आत्मा में रमा पाये सब सुख साज ॥ ६१२ ॥
इसी मुक्ति के ही लिये सदाचार सुविचार ।
ध्यान भक्ति आराधना तप सन्तोष अपार ॥ ६१३ ॥
जितने चाहे कष्ट हों इस की क्या पर्वाह ।
आत्मा को जब मिलगई परम-मुक्ति की राह ॥ ६१४ ॥

अमुक्तिवाद

पारलौकिकी मुक्ति की झूठी है सब आस ।
जब अत्यन्त परोक्ष वह तब कैसा विश्वास ॥ ६१५ ॥
परम मुक्ति होती अगर होता जग का अन्त ।
जीवों से अगणित गुणा काल अनंतानंत ॥ ६१६ ॥
युग युग में भी एक यदि परम-मुक्ति पा जाय ।
तो दुनिया में एक भी जीव न बचने पाय ॥ ६१७ ॥
किन्तु देखते जग यहां ज्यों का त्यों आबाद ।
परम-मुक्ति की किस तरह मन में रक्खें याद ॥ ६१८ ॥
परम मुक्ति के रूपमें क्या है सुख का भान ।
दुःख नहीं सुख भी नहीं वह जड़-पिंड समान ॥ ६१९ ॥
तन छूटा मन भी गया छूट गया उल्लास ।
पता नहीं विधि का वहां बस निषेध का वास ॥ ६२० ॥

ऐसी मुक्ति न चाहिये परम-शून्यतागार ।
बीमारी के साथ में लेजाये बीमार ॥ ६२१ ॥
हमको रहना है यहीं यहीं खेलना खेल ।
कभी हँसी रोना कभी कभी ठेल या मेल ॥ ६२२ ॥
परम मुक्ति जब है नहीं यदि है तो नि सार ।
तब हम इस संसार से करें नहीं क्यों प्यार ॥ ६२३ ॥

मुक्ति-अमुक्ति-समन्वय

झगड़े मुक्ति अमुक्ति के हैं सब ही नि-सार ।
जो जीवन है सामने उसका करो विचार ॥ ६२४ ॥
पर जीवनका मोक्ष तो है अत्यन्त परोक्ष ।
इस जीवन के मोक्षपर अवलम्बित वह मोक्ष ॥ ६२५ ॥
परममुक्ति हो या न हो किन्तु यहीं है मुक्ति ।
इस जीवन की मुक्ति की परम मुक्ति पुनरुक्ति ॥६२६॥
बाहर के सुख दुःख से मन में हो न विकार ।
यही मुक्ति है हाथमें सुख स्वतंत्रतागार ॥ ६२७ ॥
पर सुख की तृष्णा न हो सम हो मुक्ति अमुक्ति ।
आत्मा आत्मा में रमें कहलाती वह मुक्ति ॥ ६२८
है यह परम स्वतन्त्रता यही परम आनन्द ।
परम स्वावलम्बन यहा यहा द्वन्द सब बन्द ॥ ६२९ ॥
है न कामतृष्णा यहा फिर भी रहता काम ।
काम न उच्छृंखल यहा वह है यहा गुलाम ॥ ६३० ॥
मन गुलाम यदि काम का मोक्ष गया तब दूर ।
यदि गुलाम है काम तो मोक्ष मिला भरपूर ॥ ६३१ ॥
बन्ध मोक्ष मन में रहें दोनों मन के खेल ।
जिसकी तुमको चाह हो करलो उससे मेल ॥ ६३२ ॥

बन्ध यही संसार है मोक्ष यही संसार ।
जीवनके रसरंग से दोनो भिन्न प्रकार ॥ ६३३ ॥

गीत

करले यह संसार, मोक्षमय, करले यह संसार ।
दु:ख और सुख मन मनकी माया
यदि माया का पार न पाया ॥
भटक भटक कर थका मगर पा सका न सुख का द्वार ।
मोक्षमय करले यह ससार ॥ ६३४ ॥
इस जीवन को खेल समझकर ।
अन्दर ही अन्दर हँस हँसकर ।
रोले गाले मौज उडाले बहा रसों की धार ।
मोक्षमय करले यह संसार ॥ ६३५ ॥
कैसी आशा और निराशा ।
जग है सारा खेल तमाशा ॥
खेल खेल की जीत है यहा है खेल खेल की हार ।
मोक्षमय करले यह संसार ॥ ६३६ ॥
काम मिले तो बनजा कामी ।
नाम मिले तो बनजा नामी ।
काम नाम की तृष्णा से पर कर मत पापाचार ।
मोक्षमय करले यह ससार ॥ ६३७ ॥
यदि तुझपर आयें विपदाएँ ।
निष्फलताएँ तुझे डरायें ॥
बन तू कर्मयोग का स्वामी हँस हँस कर व्यवहार ।
मोक्षमय करले यह संसार ॥ ६३८ ॥
मोक्ष बसा इसही जीवनमें ।
मोक्ष बसा है तेरे मन में ॥
मुक्ति अमुक्तिवाद के झगड़े हैं सारे बेकार ।
मोक्षमय करले यह संसार ॥ ६३९ ॥

गीत

मुक्ति-पुरी तेरे मनमें। बाबा, ढूंढे कहां गगनमें।
स्वर्ग नचे आंगन में। बाबा, ढूँढे कहां गगनमें॥ ६४०॥
हैं विवेक की पहरेदारी पाप नहीं आपाते।
द्रोह मोह अज्ञान असंयम दूर खड़े सकुचाते॥
शुचिता रमी यहा कन कनमें।
बाबा, ढूँढे कहां गगन में॥ ६४१॥
सत्य अहिंसा राजा रानी सब सद्गुण दरबारी।
अगणित सत्यभक्त बैठे हैं पैगम्बर अवतारी॥
तू क्यों भटक रहा वन वनमें।
बाबा ढूँढे कहा गगन में॥ ६४२॥
सिद्धशिला है यहीं, यहीं वैकुण्ठ, यहीं है जन्नत।
मन की मुक्तिपुरी पर करदे न्यौछावर सारे मत॥
बनजा मुक्त इसी जीवन में।
बाबा ढूँढे कहा गगन में॥ ६४३॥

गीत

देखो आंख पसार। भक्त जी देखो आंख पसार।
घट घट में नचरही मुक्ति है बदला है संसार।
भक्तजी देखो आंख पसार॥ ६४४॥
मारपीट हिंसा न रही है।
सब के मुँह की बात सही है॥
है न दुर्व्यसन, रही न चोरी, रहा नहीं व्यभिचार।
भक्त जी देखो आंख पसार॥ ६४५॥
गाली का व्यवहार नहीं है।
लोभ मोह मद नहीं कहीं है॥
घृणा नहीं है द्वेष नहीं है रहा न मायाचार।
भक्तजी देखो आंख पसार॥ ६४६॥
दूर हुई सारी कंगाली।

है न काम की टालाटाली ॥
'करने में आगे, खाने में—पीछे का व्यवहार ।
भक्त जी देखो आंख पसार ॥ ६४७ ॥
सबने मानव राष्ट्र बसाया ।
घर घर में सब ने वर पाया ॥
मेरा तेरा भेद भुलाया बही प्रेम की धार ।
भक्त जी देखो आंख पसार ॥ ६४८ ॥
विपत्प्रलोभन का दल आया ।
सब ने उसका खेल बनाया ॥
विपदा पर हँस दिये, प्रलोभन ने पाई धुत्कार ।
भक्त जी देखो आंख पसार ॥ ६४९ ॥
एक कुटुम्बी है जग सारा ।
स्वार्थ नहीं अब न्यारा न्यारा ॥
सबके लिये खुले हैं सब के अन्तस्तल के द्वार ।
भक्त जी देखो आंख पसार ॥ ६५० ॥
डरने की अब रीति नहीं है ।
मरने की भी भीति नहीं है ।
सब ही हैं आनन्दकन्दमय सत्यभक्त अवतार ।
भक्त जी देखो आंख पसार ॥ ६५१ ॥

समन्वय और बाह्याचार

दर्शन शास्त्रों में भले रहें विचार स्वतंत्र ।
किन्तु समन्वय दृष्टि हो यही धर्म का मंत्र ॥ ६५२ ॥
धर्मतीर्थ जगमें विविध भिन्न भिन्न व्यवहार ।
करो समन्वय दृष्टि से बाह्याचार विचार ॥ ६५३ ॥
जब जिसका उपयोग हो देशकाल अनुसार ।
तब उससे ही कामलो बनो विवेकाधार ॥ ६५४ ॥
बाह्याचारों के लिये नष्ट करो मत धर्म ।

सब में दृष्टि पसार कर देखो जगहित कर्म ॥ ६५५ ॥
बनो न एकान्ती हठी छोड़ो मोह घमंड ।
सत्य सत्य सब बीन लो दूर करो पाखण्ड ॥ ६५६ ॥
करो प्रवृत्ति निवृत्ति में योग्यायोग्य विचार ।
जिससे जग-कल्याण हो करो वही व्यवहार ॥ ६५७ ॥
मूर्ति यज्ञ पूजा क्रिया सब में रखो विवेक ।
सदा निरतिवादी रहो करो नहीं अतिरेक ॥ ६५८ ॥

प्रवृत्ति-निवृत्ति-समन्वय

है न प्रवृत्ति निवृत्ति में कोई ध्येय-विरोध ।
है प्रवृत्ति रस वर्धिनी है निवृत्ति मलशोध ॥ ६५९ ॥
हो निवृत्ति दुःस्वार्थ से कट जायें सब पाप ।
हो प्रवृत्ति कल्याण में बरसे पुण्य कलाप ॥ ६६० ॥
स्वार्थ वासनाएँ घटीं चढ़ा प्रेम का रंग ।
उचित प्रवृत्ति निवृत्ति तब शिव सुन्दर के संग ॥ ६६१ ॥
है न प्रवृत्ति निवृत्ति से बद्ध सराग विराग ।
वन में भी सम्मोह है घर में भी है त्याग ॥ ६६२ ॥
साधु जगत के रूप हैं देश काल अनुसार ।
हुए प्रवृत्ति निवृत्ति के इससे विविध प्रकार ॥ ६६३ ॥
जग हित का ही ध्येय हो कोई रहे प्रकार ।
रहें प्रवृत्ति निवृत्ति का समन्वयी संसार ॥ ६६४ ॥
जग की विविध प्रवृत्तिया हैं निवृत्ति के संग ।
जग की विविध निवृत्तियां हैं प्रवृत्ति के संग ॥६६५ ॥
पापनिवृत्ति न हो अगर तो हो नरक अपार ।
पुण्य प्रवृत्ति न हो अगर तो जड़मय संसार ॥ ६६६ ॥
कभी प्रवृत्ति प्रधान है कभी निवृत्ति प्रधान ।

दोनों में दाम्पत्य है दोनों एक समान ॥ ६६७ ॥

सब प्रवृत्तिमय धर्म हैं सब निवृत्तिमय धर्म ।
अतिवादी कोई नहीं सब में हैं सत्कर्म ॥ ६६८ ॥

जनहित में न प्रवृत्ति हो तो निवृत्ति बेकार ।
स्वपर-वंचना मत करो बनो न जग के भार ॥ ६६९ ॥

जंगल में जाओ भले पर मंगल के अर्थ ।
जग का यदि मंगल न हो जंगल जाना व्यर्थ ॥ ६७० ॥

भ्रमण करो चाहे जहा शिवसुन्दर के संग ।
डोर हाथ में हो भले उड़ती रहे पतंग ॥ ६७१ ॥

तू निवृत्ति के नाम पर भग मत वन की ओर ।
वन में भी घुस जायँगे तेरे मन में चोर ॥ ६७२ ॥

गीत

ढूँढता है किसको नादान ।
अरे जंगली जंगल में तू करता किसका ध्यान ॥
ढूँढता है किसको नादान ॥ ६७३ ॥

ध्यानी बना कहा सोता है ।
यहां जगत निशदिन रोता है ॥
ये मोती से आंसू इनमें चमक रहा भगवान ।
ढूँढता है किसको नादान ॥ ६७४ ॥

पोंछ जगत के आंखो का जल ।
सच्चा प्यार बनाले अंचल ॥
इसी रसीले अंचल में हैं रब रहीम रहमान ।
ढूँढता है किसको 'नादान ॥ ६७५ ॥

दुनिया के दुख द्वन्द दूरकर ।
पावन मन में प्रेम पूरकर ॥
अरे कन्हैया बजा बांसरी छेड़ प्रेम की तान ।

ढूँढता है किसको नादान ॥ ६७६ ॥
विश्वप्रेम छाये मन मन में ।
स्वर्ग नचे सब के आँगन में ॥
स्वर्ग मुक्ति वैकुण्ठ सुनायें तान तान में गान ॥
ढूँढता है किसको नदान ॥ ६७७ ॥

गीत

अरे योगी तू भाग भाग भटका ।
आलस का पूरा पुजारी बना है तू—
मिहनत को देख देख सटका ॥
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६७८ ॥
विपदाने दुनियाके दिल हैं गलाये ।
हर दिल ने गलगल के आँसू बहाये ॥
आसू के अनमोल मोती न बीन सका—
मरुथल में जा- करके अटका ।
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६७९ ॥
समझा है मैंने ये ढोंगी है त्याग तेरा ।
समझा है मैंने ये ढोंगी विराग तेरा ॥
बातें बनानेका, दुनिया रिझानेका, सीखलिया तूने ये लटका
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६८० ॥
दुनिया के संकट में पास नहीं आया ।
अपने ही मतलब मे जीवन बिताया ॥
पैया पुजाने का, खूब माल खानेका, तूने लगाया ये चटका
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६८१ ॥
दुनिया में अन्धेर कणकण में छाया ।
सबलों ने निर्बल दबोचा दबाया ॥
तुझको न पर्वाह, निकली न एक आह, पापीका पाप नहीं खटका।
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६८२ ॥
तूने न दुखियों को धीरज दिलाया ।

तूने न प्यासे को पानी पिलाया॥
पानी तो दूर रहा, मदमें तू चूर रहा, तूने तो फोड़ दिया मटका
अरे योगी तू भाग भाग भटका ॥ ६८३ ॥

गीत

योगी, चल जनहित की राह।
इसी राह में मिलजायेगा शिव ईश्वर अल्लाह ॥
योगी चल जनहित की राह ॥ ६८४ ॥
कर दुःस्वार्थों से निवृत्ति तू हटे हृदय का दाह।
जनहितमें प्रवृत्ति कर बन तू बिना ताजका शाह ॥
योगी चल जनहित की राह ॥ ६८५ ॥
'स्वर्ग मुक्ति वैकुण्ठ यहीं हो' हो तेरे मन चाह।
यह जग हो आनन्दकन्दमय निशिदिन बारह माह॥
योगी चल जनहित की राह ॥ ६८६ ॥

मूर्ति-अमूर्ति-समन्वय

मूर्ति अमूर्ति विरोध क्या दोनों सद्व्यवहार।
दोनों का उपयोग है रुचि अवसर अनुसार ॥ ६८७ ॥
'मूर्ति बिना पूजा नहीं' यह कहते नादान।
मूर्ति में न भगवान है मन में है भगवान ॥ ६८८ ॥
समझ रहे जो मूल से पत्थर को भगवान।
उनकी पूजा व्यर्थ है हैं वे मूढ़ अजान ॥ ६८९ ॥
अतिशय माना मूर्ति में किया मूर्ति गुणगान।
तो पत्थर-पूजा हुई दिख न सका भगवान ॥ ६९० ॥
है न मूर्ति की प्रार्थना है प्रभु का गुणगान।
प्रभु को पढ़ने के लिये है यह ग्रन्थ-समान ॥ ६९१ ॥
जिसे अपढ़ भी पढ़ सकें ऐसा है यह ग्रन्थ।
बाल वृद्ध सब के लिये सरल मूर्ति का पंथ ॥ ६९२ ॥

इष्टदेव जब आगये इन आँखोंके द्वार ।
पलक पाँवड़े बिछगये आये रिश्तेदार ॥ ६९३ ॥

पिता मिला माता मिली मिले सुबन्धु हजार ।
चरण पकड़कर रोलिया निकल गया सब खार ॥६९४॥

पापों की कहदी कथा और सुनादी मूल ।
बहा हृदय का मैल सब और झटकदी धूल ॥६९५॥

आँखों से मोती बहे भरा उन्हीं से थाल ।
मन की सारी वेदना दी चरणों पर डाल ॥ ६९६ ॥

आँसू बनकर बहगये मन के सभी विकार ।
मानों हृदय पसीजकर मन का गया बुखार ॥ ६९७ ॥

आश्वासन ऐसा मिला मन को अपने आप ।
इष्टदेव के ध्यान से दूर हुआ सब ताप ॥ ६९८ ॥

ज्ञानभक्ति विश्वास का लगा अनोखा ठाठ ।
जो जो भूले पाठ थे याद हुए वे पाठ ॥ ६९९ ॥

इष्टदेव में होगया भक्त हृदय तल्लीन ।
मन के पटपर नच गये अजब सिनेमा-सीन ॥७००॥

हृदय सिनेमा पट हुआ हुई मूर्तियाँ फिल्म ।
भक्ति ज्योति से पालिया खुदा ईश का इल्म ॥ ७०१ ॥

लगा तभी अल्लाह का दिल में ही दर्बार ।
देखलिया प्रत्यक्ष सा ईश्वर का अवतार ॥ ७०२ ॥

रोम रोम हर्षित हुआ पुलकित सारा गात ।
पूजा प्रेयर में कही मन की सारी बात ॥ ७०३ ॥

मूर्ति की न पूजा हुई हुआ देवगुणगान ।
अवलम्बन ले मूर्ति का पूजलिया भगवान ॥ ७०४ ॥

गीत

भजले तू भगवान, मूर्ति में भजले तू भगवान।
पत्थर मिट्टी की यह पोथी पढ़कर पाले ज्ञान॥
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७०५ ॥

झण्डा किब्ला चित्र नदी नद।
कब्र ताजिया मस्जिद ... ॥
अक्षर पोथी आदि मूर्ति में कर रहीम का ध्यान।
मूर्ति में भजले तू भगवान ॥ ७०६ ॥

जो अच्छा सम्बन्ध दिखाती।
इष्टदेव की याद कराती॥
इष्टदेव की मूर्ति वही है करती जो गुणगान।
मूर्ति में भजले तू भगवान ॥ ७०७ ॥

सहृदय जन की चाह मूर्ति है।
लिपि भाषा की यही पूर्ति है॥
सभी सहारा लेते इसका मूरख या विद्वान।
मूर्ति में भजले तू भगवान ॥ ७०८ ॥

मूर्ति बने तेरा अवलम्बन।
इष्टदेव में लगजावे मन॥
जीवन का कुछ पाठ सिखावे हो ऐसा गुणगान।
मूर्ति में भजले तू भगवान ॥ ७०९ ॥

इष्टदेव जब मन में आते।
भूले पाठ याद होजाते॥
इष्टदेव की मूर्ति बने तब मूर्तिमान व्याख्यान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१० ॥

जग को एक किताब समझकर।
पढ़ले पाठ खुदा का जीभर॥
मन्दिर मस्जिद एक बनाले दिखे खुदा की शान।
मूर्ति में भजले तू भगवान ॥ ७११ ॥

मन्दिर में जा झोली भरले ।
बुत से याद खुदा की करले ॥
बुतपरस्त मत बन, पर बुत को अपना किब्ला मान ।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१२ ॥
कर मत कभी मूर्ति का पूजन ।
किन्तु मूर्ति से कर प्रभु में मन ॥
मूर्ति अमूर्ति समन्वय करके पाले धर्म महान ।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१३ ॥

पूजादिसमन्वय

पूजा प्रेयर प्रार्थना सन्ध्या यज्ञ नमाज ।
मानवता के पाठ को पढ़ने के सब साज ॥ ७१४ ॥
मन को आश्वासन मिले पायें संयम ज्ञान ।
इसीलिये नाना तरह सब भजते भगवान ॥ ७१५ ॥
भाषाओं में भेद है देशकाल अनुसार ।
रुचि रुचि के अनुसार हैं विधियाँ भिन्न प्रकार ॥ ७१६ ॥
जहां अपव्यय है नहीं और न पापाचार ।
वे विधियाँ स्वीकारलो अवसर के अनुसार ॥ ७१७ ॥
भजन करो या प्रार्थना अथवा पढ़ो नमाज ।
जब जैसा अवसर मिले करो उसीका साज ॥ ७१८ ॥
पूजा भजन नमाज के भिन्न भिन्न हैं ढंग ।
पर सब के भीतर भरा एक सत्य का रंग ॥ ७१९ ॥
विधियों के उद्देश्य का रखो सर्वदा ध्यान ।
विधियों का हठ छोड़कर करो उचित सन्मान ॥ ७२० ॥
विधियाँ जो युगबाह्य हों या अनिष्ट बेकार ।
मर्म समझ हठ छोड़दो करलो पूर्ण सुधार ॥ ७२१ ॥
विश्वप्रेम का ध्यानकर छोड़ो हिंसक यज्ञ ।

गीत

भजले तू भगवान, मूर्ति से भजले तू भगवान।
पत्थर मिट्टी की यह पोथी पढ़कर पाले ज्ञान॥
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७०५ ॥

झण्डा किल्ला चित्र नदी नद।
कब्र ताजिया सगे असवद ॥
अक्षर पोथी आदि मूर्ति से कर रहीम का ध्यान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७०६ ॥

जो अच्छा सम्बन्ध दिखाती।
इष्टदेव की याद कराती ॥
इष्टदेव की मूर्ति वही है करती जो गुणदान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७०७ ॥

सहृदय जन की चाह मूर्ति है।
लिपि भाषा की यही पूर्ति है॥
सभी सहारा लेते इसका मूरख या विद्वान।
मूर्ति से भजले तू भगवान॥ ७०८ ॥

मूर्ति बने तेरा अवलम्बन।
इष्टदेव में लगजाये मन ॥
जीवन का कुछ पाठ सिखाये हो ऐसा गुणगान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७०९ ॥

इष्टदेव जब मन में आते।
भूले पाठ याद होजाते ॥
इष्टदेव की मूर्ति बने तब मूर्तिमन्त व्याख्यान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१० ॥

बुत को एक किताब समझकर
पढले पाठ खुदा का जीभर ॥
मन्दिर मसजिद एक बनाले दिखे खुदा की शान।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७११ ॥

मान्दिर में जा झोली भरले ।
बुत से याद खुदा की करले ॥
बुतपरस्त मत बन, पर बुत को अपना किब्ला मान ।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१२ ॥
कर मत कभी मूर्ति का पूजन ।
किन्तु मूर्ति से कर प्रभु में मन ॥
मूर्ति अमूर्ति समन्वय करके पाले धर्म महान ।
मूर्ति से भजले तू भगवान ॥ ७१३ ॥

पूजादिसमन्वय

पूजा प्रेयर प्रार्थना सन्ध्या यज्ञ नमाज ।
मानवता के पाठ को पढ़ने के सब साज ॥ ७१४ ॥
मन को आश्वासन मिले पायें संयम ज्ञान ।
इसीलिये नाना तरह सब भजते भगवान ॥ ७१५ ॥
भाषाओं में भेद है देशकाल अनुसार ।
रुचि रुचि के अनुसार हैं विधियाँ भिन्न प्रकार ॥ ७१६ ॥
जहां अपव्यय है नहीं और न पापाचार ।
वे विधियाँ स्वीकारलो अवसर के अनुसार ॥ ७१७ ॥
भजन करो या प्रार्थना अथवा पढ़ो नमाज ।
जब जैसा अवसर मिले करो उसीका साज ॥ ७१८ ॥
पूजा भजन नमाज के भिन्न भिन्न हैं ढग ।
पर सब के भीतर भरा एक सत्य का रंग ॥ ७१९ ॥
विधियों के उद्देश्य का रखो सर्वदा ध्यान ।
विधियों का हठ छोड़कर करो उचित सन्मान ॥ ७२० ॥
विधियाँ जो युगबाह्य हों या अनिष्ट बेकार ।
मर्म समझ हठ छोड़दो करलो पूर्ण सुधार ॥ ७२१ ॥
विश्वप्रेम का ध्यानकर छोड़ो हिंसक यज्ञ ।

जगहित चिन्ता कर बनो यज्ञों के मर्मज्ञ ॥ ७२२ ॥

यज्ञ असख्य प्रकार हैं सब का है उपयोग ।
सच्चे यज्ञ करे जगत सुखी बनें सब लोग ॥ ७२३ ॥

मानवयज्ञ

सच्चे मानव यज्ञ से हुआ सभ्यतोद्धार ।
मानवता की अग्नि में पशुता का संहार ॥ ७२४ ॥

संयमयज्ञ

सकल इन्द्रियाँ वश हुईं बने विषय मर्मज्ञ ।
संयमरूपी कुंड में होता संयम यज्ञ ॥ ७२५ ॥

कर्मयज्ञ

फल की आशा का किया कर्म कुण्डमें होम ।
कर्मयज्ञ यह होगया तममें ज्योतिष्टोम ॥ ७२६ ॥

श्रमयज्ञ

निशिदिन श्रमकी साधना, श्रमका ही सन्मान ।
आलस पूजा छोड़ना है श्रमयज्ञ महान ॥ ७२७ ॥

विनययज्ञ

विनय कुण्ड में कर दिया अहंकार का होम ।
विनय यज्ञ से मद गला पिघलगया ज्यों मोम ॥ ७२८ ॥

शान्तियज्ञ

विनय बुद्धि सुखशान्ति सब हरता क्रोध पिशाच ।
शान्ति यज्ञ से रुकगया इस पिशाच का नाच ॥ ७२९ ॥

तृप्तियज्ञ

दुश्चिंताएँ दूर हों तृष्णा का हो अन्त ।
तृप्तियज्ञ सन्तोषमय जो करता वह सन्त ॥ ७३० ॥

विद्यायज्ञ

ज्ञानकुंड में होम हो रहे न कोई अज्ञ ।
दग्ध जहां हो मूढ़ता वह है विद्यायज्ञ ॥ ७३१ ।

विज्ञानयज्ञ

मिटें अन्धविश्वास सब हो विज्ञान विचार ।
हुआ यज्ञ विज्ञान का चमक गया संसार ॥ ७३२ ॥

धनयज्ञ

जनसमाज के कुंड में धन का आहुतिदान ।
धनियों के सौभाग्य सा है धनयज्ञ महान ॥ ७३३ ॥

औषधयज्ञ

उचित चिकित्सा से किया रोगों का अवसान ।
सामूहिक उपकार यह औषधयज्ञ महान ॥ ७३४ ॥

नेत्रयज्ञ

नेत्रयज्ञ में आंख का सच्चा हुआ इलाज ।
गई गुलामी रात की हुआ दिवस का राज ॥ ७३५ ॥

सेवायज्ञ

सेवा करने के लिये मिले सुबन्धु हजार ।
घर घर सेवायज्ञ से बना नया संसार ॥ ७३६ ॥

पदयज्ञ

जग की सेवा के लिये पद पदवी का त्याग ।
है पदयज्ञ महान यह सेवा में अनुराग ॥ ७३७ ॥

अधिकार यज्ञ

अधिकारों का त्याग या विनययुक्त व्यवहार ।
यज्ञ हुआ अधिकार का जो गौरव का सार ॥ ७३८ ॥

जातियज्ञ

जातियज्ञसे बनगया घर घर मानवराज ।
जाति पाति टूटी सभी आया सत्यसमाज ॥ ७३९ ॥

लिंगयज्ञ

नरनारी समभावमय हुआ उचित व्यवहार ।
लिंगयज्ञ से होगया नारी का उद्धार ॥ ७४० ॥

भाषायज्ञ

तोडी भाषा यज्ञ ने भाषाओं की टेक ।
सरल शुद्ध नियमित बनी मानवभाषा एक ॥ ७४१ ॥
मानवभाषा पर हुई भाषाएँ कुर्बान ।
सब हृदयों से होगई हृदयों की पहिचान ॥ ७४२ ॥

लिपियज्ञ

हुआ महा लिपियज्ञ से लिखापढा संसार ।
सारे जग की होगई लिपि भी एक प्रकार ॥ ७४३ ॥

राष्ट्रयज्ञ

प्रात घुले सब राष्ट्रमें राष्ट्र हुए सब एक ।
राष्ट्र यज्ञ से मिटगई, राष्ट्र राष्ट्र की टेक ॥ ७४४ ॥

धर्मयज्ञ

सम्प्रदाय सब मिलगये मिटे सभी दुष्कर्म ।
मन्दिर मसजिद सब मिले जीता सच्चा धर्म ॥ ७४५ ॥

प्राणयज्ञ

जनता के हित के लिये प्राणों का उत्सर्ग ।
प्राणयज्ञ से आगया मुट्ठी में अपवर्ग ॥ ७४६ ॥

कीर्तियज्ञ

नाम रहे या जाय, पर, हो समाज-उद्धार ।
कीर्तियज्ञ यह विश्व में अनुपम त्यागागार ॥ ७४७ ॥

ब्रह्मयज्ञ

जगहितरूपी ब्रह्म में किया आत्महित लीन ।
यज्ञशिरोमणि है यही ब्रह्मयज्ञ स्वाधीन ॥ ७४८ ॥

ये ही सच्चे यज्ञ हैं सुखदाता अभिराम ।
जो हिंसक बलिदान वे– क्रूर कसाई काम ॥ ७४९ ॥

गीत

क्रूर कसाई काम, करो मत, पशुओं का बलिदान ।
खुदा सभी का पिता कहाता ।
जगदम्बा है सब की माता ॥
मातपिता कैसे खायेंगे अपनी ही सन्तान ।
करो मत, पशुओं का बलिदान ॥ ७५० ॥

रक्तमास का होम करो मत ।
स्वाहा स्वाहा ओम करो मत ॥
होम-करो मन की पशुता का होगा यज्ञ महान ।
करो मत, पशुओं का बलिदान ॥ ७५१ ॥

विश्वप्रेम का कुण्ड बनाओ ।
सद्विवेक की अग्नि जलाओ ॥
उसी कुंड में दुःस्वार्थों को करदो राख-समान ।
करो मत, पशुओं का बलिदान ॥ ७५२ ॥

उस ईश्वर की चाह यही है ।
होमयज्ञ की राह यही है ॥
इसी राह में हैं जगदम्बा, खुदा ईश भगवान ।
करो मत पशुओं का बलिदान ॥ ७५३ ॥

गीत

कैसा है विद्वान, अरे तू, कैसा है विद्वान।
अरे होमवाले न तुझे है होमकार्य का ज्ञान ॥
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५४ ॥
कैसी यह तेरी प्रभु-सेवा।
जलादिया घी शक्कर मेवा ॥
जब कि तरसती है कण कण को प्रभु की ही सन्तान;
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५५ ॥
हुआ जगत में दुर्लभ ईंधन।
पर तू जला रहा चन्दन वन ॥
कच्ची रोटी को पक्की करने का तुझे न ध्यान।
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५६ ॥
अगर वायु है शुद्ध बनाना।
डांस और कीटाणु भगाना ॥
गुग्गल धूप नीम की पत्ती जलने दे मतिमान।
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५७ ॥
अग्नि देवता रहा तभी था।
जब विस्मयमय विश्व सभी था ॥
तेरे पुरखे समझ न पाये ये भौतिक विज्ञान।
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५८ ॥
छोड़ छोड़ यह सब भोलापन।
रख न अन्ध-श्रद्धाओं में मन ॥
छोड होम-लीला, करले बस, कर्तव्यों का गान।
अरे तू कैसा है विद्वान ॥ ७५९ ॥

गीत

कैसा यह व्यापार, पुजारी, कैसा यह व्यापार।
ईश्वर को भी भुला रहा तू करता मायाचार ॥
पुजारी, कैसा यह व्यापार ॥ ७६० ॥

मन से तू गुणगान न करता।
स्वार्थों का बलिदान न करता ॥
पैसे में भगवान भुलाकर भरवाता भण्डार ।
पुजारी कैसा यह व्यापार ॥ ७६१ ॥

रात रात भर ढोल बजाता ।
जग न घड़ी भर भी सोपाता ॥
कर्तव्यों का ज्ञान नहीं बस चिल्लाता बेकार ।
पुजारी कैसा यह व्यापार ॥ ७६२ ॥

विधियों का भारी आडम्बर ।
जिसमें फसते हैं नारी नर ॥
ज्ञान ध्यान क्या मिले लुटाई की होती भरमार ।
पुजारी कैसा यह व्यापार ॥ ७६३ ॥

आडम्बर का मोह छोड़ दे ।
मन की सब माया निचोड़ दे ।
बने ज्ञानशाला यह मन्दिर ईश्वर हो साकार ।
पुजारी कैसा यह व्यापार ॥ ७६४ ॥

गीत

पढ़ले आज नमाज, नमाजी पढ़ले आज नमाज ।
जिस नमाज में भरा हुआ है पूजा का भी साज ॥
नमाजी पढले आज नमाज ॥ ७६५ ॥

क्या पूरब क्या पच्छिम भाई ।
यह सारा ससार खुदाई ॥
मन्दिर में भी मसजिद में भी, एक खुदा का राज ।
नमाजी पढले आज नमाज ॥ ७६६ ॥

पढ़ले वही नमाज नमाजी ।
हो हिन्दू मुसलिम सब राजी ॥
मिट जायें पूजा नमाज के सारे झगड़े आज ।
नमाजी पढ़ले आज नमाज ॥ ७६७ ॥

मन्दिर में नमाज पढ ख्वाजा ।
मसजिद में बजने दे बाजा ॥
तेरे सिर पर सभी फरिश्ते मिलकर रक्खें ताज ।
नमाजी पढ़ले आज नमाज ॥ ७६८ ॥
ईश्वर या अल्लाह एक है ।
सब धर्मों की राह एक है ।
मन मन में किब्ला, जन जनमें आया सत्यसमाज ।
नमाजी पढ़ले आज नमाज ॥ ७६९ ॥

गीत

इधर उधर क्या ढूंढ रहा है किब्ला तेरे दिलमें ।
है किब्ला तेरे दिलमें ।
जो दिलमें वह इस महफिल में तारोंकी झिलमिलमें ।
है किब्ला तेरे दिलमें ॥ ७७० ॥
क्या मन्दिर मसजिद गिरजावर मक्का और मदीना ।
खुदा जहां किब्ला है वो ही खुदा भरा तिल तिलमें ।
है किब्ला तेरे दिलमें ॥ ७७१ ॥
ये किब्ला या वो किब्ला है यों क्यों लडता मूरख ।
दिलमें अगर न किब्ला पाया तो क्या पाया गिलमें ?
है किब्ला तेरे दिलमें ॥ ७७२ ॥
करले दिल को पाक जहां के सारे किब्ले झलकें ।
जर्रे जर्रे में किब्ला है दुनिया की महफिलमें ।
है किब्ला तेरे दिलमें ॥ ७७३ ॥

समभाव और विवेक

सम्प्रदाय पर डालदो सद्विवेक की दृष्टि ।
देशकाल से छानकर करो धर्म की सृष्टि ॥ ७७४ ॥
पक्षपात सब छोडदो हो निष्पक्ष विचार ।
तब सब को मिलजायगा सब धर्मों का सार ॥ ७७५

बाल्यावस्था में पड़े जो अनुचित संस्कार।
उनको कसा विवेक पर रहा न मन अनुदार॥ ७७६ ॥
अपनी ही अच्छी लगे जब मन हैं अनुदार।
समझो यह अनुदारता मन का कारागार॥ ७७७ ॥
छोड़ो यह अनुदारता सब झूठे संस्कार।
पक्षपात के पाप की करो नहीं बेगार॥ ७७८ ॥
जहां रहे अनुदारता वहां द्वेष संचार।
बन सकता था स्वर्ग पर हुआ नरक तैयार॥ ७७९ ॥
छूटी जब अनुदारता उमड़ पड़ा तब प्यार।
जगह जगह मिलने लगा सत्येश्वर का द्वार॥ ७८० ॥
सत्येश्वर के द्वार पर करो सभी से प्यार।
तुम जग के पूरक बनो सब के रिश्तेदार॥ ७८१ ॥
जिससे जो कुछ मिलसके अपने युग अनुसार।
उससे वह करलो ग्रहण बन निष्पक्ष उदार॥ ७८२ ॥
झूठी निन्दा मत करो करो नहीं अपमान।
मन में रखो कृतज्ञता उपकारों का ध्यान॥ ७८३ ॥
मातपिता यदि मरगये पहुँचादिये मसान।
तो भी उनके नाम का रहता है सन्मान॥ ७८४ ॥
उनकी जिस सम्पत्ति का जो जितना उपयोग।
वह उतना करते सदा रख विवेक सब लोग॥ ७८५ ॥
धर्मतीर्थ या देव की है ऐसी ही बात।
उनके सत उपकार सब याद रखो दिनरात॥ ७८६ ॥
पर जो कुछ प्रतिकूल हो उसकी करो न टेक।
सत्यभक्ति छोड़ो नहीं मन में रखो विवेक॥ ७८७ ॥
जब युग परिवर्तन हुआ बदलगया तब धर्म।

युग युग के अनुसार ही होते सारे कर्म ॥ ७८८ ॥
'तब से मेरा धर्म है जब से यह संसार।'
ऐसे दावे मत करो हर प्रकार बेकार ॥ ७८९ ॥
तब से सारे पाप हैं जब से है संसार।
इसीलिये क्या होगये पापी इज्जतदार ॥ ७९० ॥
'सर्वज्ञों ने है कहा मेरा धर्म महान।'
ऐसा दावा जो करें वे पूरे नादान ॥ ७९१ ॥
सब धर्मों के मूलमें हैं सर्वज्ञ महान।
वह कैसी सर्वज्ञता जिसका यह अभिमान ॥ ७९२ ॥
सर्वकाल सब लोक का परम असंभव ज्ञान।
तब हँसने लायक हुआ निराधार अभिमान ॥ ७९३ ॥
सच्ची वह सर्वज्ञता जो युग का विज्ञान।
है ऐसी सर्वज्ञता सब धर्मों की जान ॥ ७९४ ॥
हैं सच्चे सर्वज्ञ सब सत्येश्वर के दास।
औरों की सर्वज्ञता है कल्पना-विलास ॥ ७९५ ॥
सत्येश्वर के चरण की जो पाजाते धूल।
कहलाते सर्वज्ञ वे युग युग के अनुकूल ॥ ७९५ ।
काल अनादि अनत है है आकाश अपार।
है सर्वज्ञों की यहां कण कण में भरमार ॥ ७९६ ॥
दृष्टा योगी बुद्ध जिन पैगम्बर अर्हन्त।
कहलाते सर्वज्ञ ये सब युग युग के सन्त । ७९८ ॥
ये युग-दृष्टा हैं बड़े रखते युग-विज्ञान।
इसीलिये कहलासके ये सर्वज्ञ महान ॥ ७९९ ॥
सब की सीमित शक्ति है सीमित सब का ज्ञान।
सत्येश्वर के अंशमें सबका पर्यवसान ॥ ८०० ॥

सत्येश्वर शिवरूप है तीनों काल त्रिपुंड ।
रोम रोम में भररहे सर्वज्ञों के झुंड ॥ ८०१ ॥
सत्येश्वर के सामने कौन नहीं है दीन ।
सत्यभक्त लाखों यहा रजकण में तल्लीन ॥ ८०२ ॥
ऋषि मुनि योगी बुद्ध जिन पैगम्बर अवतार ।
सत्यभक्त सारे खड़े सत्येश्वर के द्वार ॥ ८०३ ॥
सत्येश्वर पद धूलि का पाजाते जो लेश ।
कहलाते सर्वज्ञ वे देते युग-सन्देश ॥ ८०४ ॥
अपने युग में जो कभी कहलाता सर्वज्ञ ।
युग का हुआ विकास तब कहलासकता अज्ञ ॥ ८०५ ॥
सर्व शब्द का अर्थ है उपयोगी संसार ।
लगता उसका अर्थ है प्रकरण के अनुसार ॥ ८०६ ॥
'सब पाया' 'सब कुछ दिया' 'सब तुमको मालूम ।
वचन वचन में है मची सर्व शब्द की धूम ॥ ८०७ ॥
घर घर में सर्वज्ञ ज्यों रखते घर का ज्ञान ।
युग युग में सर्वज्ञ त्यों करते युग का भान ॥ ८०८ ॥
सर्वज्ञों के नाम का है झूठा अभिमान ।
क्योंकि किसी सर्वज्ञ को है न पूर्ण विज्ञान ॥ ८०९ ॥
फिर भी उसके कम नहीं पूजा और महत्त्व ।
अपने युग में देसका वह जीवन का तत्व ॥ ८१० ॥
उसकी रहे कृतज्ञता रहे खूब सन्मान ।
पर सुधार करते रहो रखकर युग पर ध्यान ॥ ८११ ॥
जब युग-परिवर्तन हुआ हुई नई तब सृष्टि ।
परिवर्तन पर मत करो कभी उपेक्षा-दृष्टि ॥ ८१२ ॥
युग-परिवर्तन का रहे मनमें सदा विचार ।

सर्व-धर्म समभाव का बने उचित व्यवहार ॥ ८१३ ॥
धर्मों से चिपटो नहीं देखो उनका कार्य ।
सर्व धर्म समभाव में है विवेक अनिवार्य ॥ ८१४ ॥
जगत बने आनन्दमय मानव बने अजेय ।
स्वर्ग मोक्ष घर घर बसें सब धर्मों का ध्येय ॥ ८१५ ॥
प्राणी के मन में रहे सदा सुखों की चाह ।
किन्तु चाह में भूलकर चलता सदा कुराह ॥ ८१६ ॥
उस कुराह को दूर कर धर्म दिखाता राह ।
वर्तमान के दुःख की करो नहीं पर्वाह ॥ ८१७ ॥
अधिक जीव सन्तुष्ट हों अधिक समय हो प्रीति ।
मात्रा हो सुखकी अधिक यही धर्म की रीति ॥ ८१८ ॥
अपना सुख जग के लिये बने न नरकागार ।
सब के सुख का ध्यान हो सब धर्मों का सार ॥ ८१९
कर्तव्यों की है तुला आत्मौपम्य-विचार ।
सिखलाते सब धर्म है कर्तव्यों का सार ॥ ८२० ॥
सिखलाते सब धर्म हैं पाप बढ़ाता ताप ।
जब अपने ऊपर पड़े पापी सहे न पाप ॥ ८२१ ॥
चोरी करता चोर पर चोरी सहे न चोर ।
चोरों के घर चोर हों चोर मचायें शोर ॥ ८२२ ॥
अपने को जो है बुरा पर को भी वह जान ।
थोड़े शब्दों में हुआ सब धर्मों का ज्ञान ॥ ८२३ ॥
सब धर्मों से छन रहे ये ही वचन प्रसून ।
सुखी बनें जग में बहुत दुखी न्यून से न्यून ॥ ८२४ ॥
सार्वजनिक पर डालकर सार्वकालिकी दृष्टि ।
जगद्धित का निर्णय किया हुई धर्म की सृष्टि ॥ ८२५ ॥

मेरा तेरा भूलकर देखो सारे धर्म ।
सब धर्मों से सार लो करो सुखकर कर्म ॥ ८२६ ॥
अगर धर्म में घुसगया पक्षपात अन्याय ।
तो पापों की आग को जग में कौन बुझाय ॥ ८२७ ॥
धर्म में न झगड़े करो करो नहीं अन्याय ।
यदि जल भी जलने लगे जगको कौन बुझाय ॥ ८२८ ॥
सब धर्मों का सार लो करो प्रेम सत्कर्म ।
परम समन्वय से बने सच्चा मानवधर्म ॥ ८२९ ॥

गीत

सब धर्मों का सार, मिलायें, सब धर्मों का सार ।
हम सबका निचोड लेआयें ।
सच्चा मानव धर्म बनायें ॥
युग युग की यह प्यास बुझायें, बने एक संसार ।
मिलायें सब धर्मों का सार ॥ ८३० ॥
सब रस मिलें सजायें थाली ।
भिन्न भिन्न फूलों के माली ॥
संस्कृतियाँ सब बने समन्वित सच्चे लोकाचार ।
मिलायें सब धर्मों का सार ॥ ८३१ ॥
भूत भविष्य न लड़ने पायें ।
वर्तमान से हिलमिलजायें ॥
देश देश की काल काल की बहे समन्वय धार ।
मिलायें सब धर्मों का सार ॥ ८३२ ॥
मानवता का गाना गायें ।
जीवन का संगीत सुनायें ॥
भिन्न भिन्न हो तार किन्तु हो मिलीजुली झंकार ॥
मिलायें सब धर्मों का सार ॥ ८३३ ॥

पंडित पोप पादरी हाजी ।
सारा जग हो सत्यसमाजी ॥
तार तार में प्यार रमायें हो सब का उद्धार ॥
मिलाये सब धर्मों का सार ॥ ८३४ ॥



चौथा अध्याय

सर्वजाति-समभाव

गीत

मानवता का ध्यान, करो रे मानवता का ध्यान।
मानव मानव एक जाति सब मनु आदम सन्तान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८३५ ॥
क्या पूरब क्या पच्छिम वाले।
कैसे गोरे कैसे काले ॥
देश देश का जाति जाति का है इन्सान समान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८३६ ॥
जर्मन फ्रांस रूस अमरीका।
तुर्क अरब इंग्लिश अफ्रीका ॥
सब मिल एक राष्ट्र बनजाये चीन हिन्द जापान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८३७ ॥
कैसी है यह डडाशाही।
घर घर में क्यों मची तबाही ॥
सब ही एक पिता के बेटे फिर क्यों यह घमसान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८३८ ॥
सरल हुआ अब आना जाना।
फिर क्यों दुनिया अलग बनाना ॥
पर घर में अपना घर पाना पाना सब सन्मान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८३९ ॥
मन से मनका मेल मिलाये।
सब की बोली एक बनायें ॥
हँस हँस बोलें सब दिल खोलें जल जाये शैतान ॥
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८४० ॥
दुई न कर पाये बर्बादी।

गोरे कालों में हो शादी ॥
संकर और असंकर सब हैं शंकर की सन्तान ॥
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८४१ ॥
जातिपाति के भूत भगायें।
मानव एक कुटुम्ब बनायें ॥
फटे हृदय सिल जायँ
सभी मिल जायँ
हृदय खिल जायँ
सभी के पूरे हो अरमान।
करो रे मानवता का ध्यान ॥ ८४२ ॥
एकजाति सब आदमी एक सरीखे अंग।
भिन्न भिन्न जलवायु से भिन्न भिन्न है रंग ॥ ८४३ ॥
एकजाति सब आदमी थल है सब का देश।
गिरिसागर से होगया राष्ट्रभेद का क्लेश ॥ ८४४ ॥
एकजाति सब आदमी वचन शक्ति है एक।
मिलने जुलने के बिना भाषा हुई अनेक ॥ ८४५ ॥
एकजाति सब आदमी रोटी सब की एक।
काम बढ़ा संसार का धंधे हुए अनेक ॥ ८४६ ॥
एकजाति सब आदमी आदम सब का बाप।
कुल कुटुम्ब का भेद है अहंकार की छाप ॥ ८४७ ॥
एकजाति सब आदमी मन है एक प्रकार।
देशकाल के भेद से भिन्न भिन्न व्यवहार ॥ ८४८ ॥
एकजाति सब आदमी न्याय सभी का एक।
देशकाल के भेद से शासन हुए अनेक ॥ ८४९ ॥
एकजाति सब आदमी है दाम्पत्य समान।
मानव के आकार है सब संकर सन्तान ॥ ८५० ॥
एकजाति सब आदमी नर नारी न अनेक।

इन दो अंगों से बना पूरा मानव एक ॥ ८५१ ॥

एकजाति सब आदमी मानव एक समाज ।
अहंकार से लुटगया मानवता का राज ॥ ८५२ ॥

जातिभेद से होगया स्वर्ग हमारा दूर ।
यह दुनिया दोजख बनी दु:ख सहे भरपूर ॥ ८५३ ॥

सिंह बाघ से भी अधिक हुआ आदमी क्रूर ।
मूरखता में भी बढा हुई बुद्धि सब चूर ॥ ८५४ ॥

सिंह शिकार न सिंहका क्योंकि जाति है एक ।
मानव कितना मूर्ख है इतना भी न विवेक ॥ ८५५ ॥

जातिभेद से जब हुई दंगों की भरमार ।
तब मानव की क्रूरता हुई नरक के पार ॥ ८५६ ॥

बच्चे बुड्ढे नारियाँ सब होगये शिकार ।
अंग अंग छिदने लगे बही रक्त की धार ॥ ८५७ ॥

भारी चिल्लाहट मची मचा खूब घमसान ।
आखें पथरासीं गईं हुए बधिर से कान ॥ ८५८ ॥

चलना फिरना भी कठिन राह बनी तब सौत ।
आगे पीछे सब तरफ कदम कदम पर मौत ॥ ८५९ ॥

गाव नगर सब जल उठे हुए सदन सब खाक ।
घर के घर में भुनगये आया कुम्भीपाक ॥ ८६० ॥

कौड़ी कौड़ी लुटगई बिखर गये सब साज ।
दाने दाने के लिये हुए सभी मुँहताज ॥ ८६१ ॥

नष्ट हुआ व्यापार सब फैला घोर अकाल ।
दिन में भी दिखने लगे भूत प्रेत बेताल ॥ ८६२ ॥

लाज शील सब लुटगया फैले अत्याचार ।
जड से उखड़ी सभ्यता फैला भ्रष्टाचार ॥ ८६३ ॥

इज्जत मिट्टी में मिली गई सती की लाज।
दर्गो में बस रहगया साँडों का ही राज ॥ ८६४ ॥
बिछुड़े भाई बन्धु सब गये पड़ौसी छूट।
चिथड़े चिथड़े कर गई जातिभेद की फूट ॥ ८६५ ॥
जातिभेद जब तक रहे तब तक सब बेकार।
मिले स्वर्ग सामान भी होगा नरक तयार ॥ ८६६ ॥
करदेंगी सब शक्तियाँ या सारा विज्ञान।
जातिभेद के पाप से सारा जगत मसान ॥ ८६७ ॥
जातिभेद के पक्ष से पापी भी पुजजाय।
जातिभेद के पक्ष से धर्मी धक्का खाय ॥ ८६८ ।
पुण्य परायासा जहां अपनासा है पाप।
बिना बुलाये आगया दोजख अपनेआप ॥ ८६९ ॥

गीत

छोड़ो जातिभेद का पाप।
मिलोजुलो सब मानव मानव करलो मेल मिलाप।
छोड़ो जातिभेद का पाप ॥ ८७० ॥
सभी जातियों में हैं सज्जन।
सभी जातियों में हैं दुर्जन ॥
फिर क्यों झेलरहे हो सिर पर जातिभेद का श्राप।
छोड़ो जातिभेद का पाप ॥ ८७१ ॥
सज्जन की जब जाति नहीं है।
दुर्जन की जब पांति नहीं है।
तब क्यों जातिपांति कहकहकर करते वृथा प्रलाप।
छोड़ो जातिभेद का पाप ॥ ८७२ ॥
अगर न गुणियों को अपनाया ॥
सज्जन को कहदिया पराया ॥

भूल चुके मानव जीवन का तब तुम सच्चा माप ।
छोड़ो जातिभेद का पाप ॥ ८७३ ॥
जग के सब सज्जन अपनाओ ।
जातिपाति का भूत भगाओ ॥
तब सज्जनतामय होजाये दुनिया अपनेआप ।
छोड़ो जातिभेद का पाप ॥ ८७४ ॥

गीत

झूठा है अभिमान । जातिका झूठा है अभिमान ।
जातिपांति के भेदभाव की झूठी है सब शान ।
जातिका झूठा है अभिमान ॥ ८७५ ॥
भोजन में तू देख सफाई ।
स्वाद बनाने की चतुराई ॥
देख शुद्धि पाचकता फिर तू कर न जाति का ध्यान ।
जाति का झूठा है अभिमान ॥ ८७६ ॥
भोजन हो गंदा से गंदा ।
पर हो जातिपांति का फंदा ॥
फिर तुझ को इतराज नहीं कुछ कैसा तू नादान ॥
जातिका झूठा है अभिमान ॥ ८७७ ॥
वर कन्या में मेल न खाये ।
लेकिन जातिपाति मिलजाये ॥
फिर भी शादी होसकती है गुण की क्या पहिचान ।
जातिका झूठा है अभिमान ॥ ८७८ ॥
गुण को देखदेख कर शादी ।
जातिपांति से है बर्बादी ॥
देख गुणों का योग्य समन्वय कर दाम्पत्य-विधान ।
जातिका झूठा है अभिमान ॥ ८७९ ॥
जातिपांति के बन्धन टूटें ॥
मिलने जुलने का सुख लूटें ॥

आखिर एक जाति हैं हम सब मनु आदम सन्तान ॥
जातिका झूठा है अभिमान ॥ ८८० ॥

दोहा

सब में सहभोजन करो सब में करो विवाह ।
सभी कुटुम्बी बन चलो मानवता की राह ॥ ८८१ ॥
जातिभेद सब तोड़कर करो परस्पर प्यार ।
रंग राष्ट्र कुल आदि के सकल भेद निःसार ॥ ८८२ ॥

रंगभेद

रंगभेद ने कर दिया दुनिया का संहार ।
बना सभ्यता-वेष में मानव पापागार ॥ ८८२ ॥
काले पीले गेहुएँ गोरे अथवा लाल ।
रंग रंग के लोग सब लडे हुए बेहाल ॥ ८८४ ॥
अमरीका आष्ट्रेलिया और आफ्रिका खंड ।
छातीपर सहने लगे अत्याचार प्रचंड ॥ ८८५ ॥
हुआ आद्यगुरु एशिया बेइज्जत बेदाम ।
घर में ही बेघर हुआ मालिक हुआ गुलाम ॥ ८८६ ॥
अपने ही घर में हुए अपने पुत्र शिकार ।
मातपिता रोने लगे निशदिन आसू ढार ॥ ८८७ ॥
जिन्दे ही भूने गये रंग रंग के लोग ।
तड़प तडप करके हुआ दु:सह प्राणवियोग ॥ ८८८ ॥
फैलगई संसार में अहंकार–विष बेल ।
खेले सभ्यम्मन्य ये शैतानी के खेल ॥ ८८९ ॥
चली लिंच की कुप्रथा चीँल उठा ब्रह्माड ।
सह न सका शैतान भी ऐसे हत्याकाड ॥ ८९० ॥
खेलीं गोरी जातियाँ शैतानी के संग ।

मानवता से चिढ़गया मानो गोरा रंग ॥ ८९१ ॥
गोरा तन रहने लगा काले तन से दूर ।
पर मन के भीतर भरा कालापन भरपूर ॥ ८९२ ॥
मानो मानवता जलीं जले फरिश्ते लाख ।
हृदय कोयला बनगया तन पर छाई राख ॥ ८९३ ॥
रंगभेद-मद ने किया मानवता का नाश ।
खींचरही शैतानियत मानवता की लाश ॥ ८९४ ॥
अपने तन के रंग का है घमंड बेकार ।
मानवता के मूल्य हैं सदाचार सुविचार ॥ ८९५ ॥
तन के रंग अनेक हों किन्तु जाति है एक ।
गर्मी सर्दी ने किये तन के रंग अनेक ॥ ८९६ ॥
गोरे अमरीका गये बदलगई तब खाल ।
रेड इंडियन से बने पीढ़ी पीढी लाल ॥ ८९७ ॥
आब हवा भोजन वसन मिट्टी वर्षा धूप ।
बनते इनके योगसे तरह तरह के रूप ॥ ८९८ ॥
सभी रंग के अंग में खून एक ही रंग ।
मनका रंग समान है भले जुदे हों अंग ॥ ८९९ ॥
मूढ देखता अंग क्यों करले मन की चाह ।
मन में मानवता बसी मन शरीर का शाह ॥ ९०० ॥
रंगभेद को भूलकर कर सब से सहकार ।
मानवता को पूजकर बना नया संसार ॥ ९०१ ॥

गीत

देखता है क्या तन का रंग ।
मानवता मन में रहती हैं सद्विवेक के संग ॥
देखता है क्या तन का रंग ॥ ९०२ ॥

काला कुत्ता काला घोड़ा ।
इसपर तेरा प्रेम न थोड़ा ॥
तव काले मानव मे ही क्यो शैतानी का ढग ।
देखता है क्या तन का रंग ॥ ९०३ ॥

काली लाल गौर या पीली ।
चमडी है यदि रंगरंगीली ॥
पर सब मानव एक जाति हैं मानव के सब अंग ।
देखता है क्या तन का रंग ॥ ९०४ ॥

रग रग के यदि नर नारी ।
बन विवाहित प्यारे प्यारी ।
चढ़े प्रेमका रग मेल की उठती रहें उमंग ॥
देखता है क्या तन का रग ॥ ९०५ ॥

काले गोरे सब मिलजायें ।
दुनिया एक कुटुम्ब बनायें ।
कर न सके तब यह दानवता मानवता को तंग ।
देखता है क्या तन का रंग ॥ ९०६ ॥

देशभेद

देशप्रान्त उपप्रान्त के सभी भेद बेकार ।
अब आना जाना सरल करो सकल व्यवहार ॥ ९०७ ॥
सारी दुनिया का बना आज एक बाजार ।
आना जाना रातदिन हरदिन चिट्ठी तार ॥ ९०८ ॥
प्रान्त प्रान्त उपप्रान्त के रहे न राज्य अनेक ।
सब बराबरी से मिले राष्ट्र बना है एक ॥ ९०९ ॥
एक राष्ट्रभाषा बनी बदलगये हैं वेष ।
लड़ने को अब रहगया भेदभाव ही शेष ॥ ९१० ॥
भेदभाव यह छोड़दो हों शादी व्यवहार ।
हो कौटुम्बिकता बढ़ी एक बने संसार ॥ ९११ ॥

कोई देश न बन सके गुण का ठेकेदार।
देशभेद को छोड़कर गुण का करो विचार ॥ ९१२ ॥
गुण का ठेकेदार जब रहा न कोई देश।
देशभेद से क्यों बने जातिभेद का क्लेश ॥ ९१३ ॥
मद न करो निजदेश का सभी जगह है धूल।
जिसमें जो रहने लगे उसको वह अनुकूल ॥ ९१४ ॥
सभी जगह है चांदनी सभी जगह है धूप।
सभी जगह है दिख चुका सत्येश्वर का रूप ॥ ९१५ ॥
सभी जगह हैं आचुके सत्येश्वर के दास।
सभी जगह है होचुका सत्यभक्त का वास ॥ ९१६ ॥
सभी जगह हैं पड़ चुके करुणारस के बोल।
सत्यभक्त की आंख के वे आंसू अनमोल ॥ ९१७ ॥
सभी जगह है बह चुकी प्रेम सुधा की धार।
सभी जगह फूला फला मानवता का प्यार ॥ ९१८ ॥
सभी जगह है होचुका वत्सलता का दान।
माताओं के वक्ष से बच्चों का पयपान ॥ ९१९ ॥
उससे बड़ा पवित्र क्या जगमें तीर्थस्थान।
माताओं ने दूध का जहां कराया पान ॥ ९२० ॥
सारा जगत पवित्र है सब है तीर्थस्थान।
अब किसका अपमान हो किसका हो सन्मान ॥ ९२१ ॥
देश देश सब एक हैं सभी आदमी एक।
एकजाति सब आदमी सभी देश हैं नेक ॥ ९२२ ॥
सब की नेकी जोड़लो जीवन हो भरपूर।
गुण गुण का आदान हो दोष दोष हों दूर ॥ ९२३ ॥
सब मनुष्य होजायँ तब गुण के ही भंडार।

मानव का बनजाय तब गुणग्राही संसार ॥ १२४ ॥
देश देशमें घर बनें घर घर में हो प्यार ।
सब अपने ही देश हों अपना सब संसार ॥ १२५ ॥

गीत

सारा जग है देश हमारा ।
मिलना जुलना नित्य हुआ जब तब क्यों हो जग न्यारा ।
सारा जग है देश हमारा ॥ १२६ ॥
महाद्वीप हैं सभी हमारे सभी प्रान्त हैं आलय ।
दुनिया के कण कण पर पाई अब मानवता ने जय ॥
मानव मानव बने कुटुम्बी फैला भाईचारा ।
सारा जग है देश हमारा ॥ १२७ ॥
चलते हैं बेतार तार तब क्यों मानवता टूटे ।
एक बना बाजार हमारा लेन देन क्यों छूटे ॥
खान पान शादी विवाह में बहे एक रसधारा ।
सारा जग है देश हमारा ॥ १२८ ॥
रोक नहीं सकतीं अब हमको ये पर्वत मालाएँ ।
ये नदियाँ या उच्च तरंगें सागर की बालाएँ ॥
बढ़ते हम बेरोक टोक अब व्याप लिया जग सारा ।
सारा जग है देश हमारा ॥ १२९ ॥
मानव ही है जाति हमारी सारी दुनिया नगरी ।
रस का प्याला पिला रहे हम लिये प्रेम की गगरी ।
हम सारे जग को प्यारे हैं सब जग हमको प्यारा ।
सारा जग है देश हमारा ॥ १३० ॥

वृत्तिभेद

एक जाति सब आदमी वेष किन्तु अनेक ।
विप्र क्षत्र विट् शूद्र की मूल जाति है एक ॥ १३१ ॥
वृत्तिभेद का जातिसे है न तनिक सम्बंध ।

उसमें जाति टटोलते वे भीतर से अन्ध ॥ १३२ ॥
धंधों में क्या नीचता सब जीवन के कार्य ।
सब ही इज्जतदार हैं जीवन को अनिवार्य ॥ १३३ ॥
वृत्तिभेद बनता नहीं कभी वर्ण का भेद ।
धंधे से बनते नहीं काले और सफेद ॥ १३४ ॥
वृत्तिभेद के नामपर वर्ण जाति है व्यर्थ ।
सब के काम मिले जुले सब जीवन के अर्थ ॥ १३५ ॥
नर नारी के हैं विविध यद्यपि कार्य अनेक ।
तो भी उनकी जाति या कुल कुटुम्ब सब एक ॥ १३६ ॥
परिचर्या में कर रही माता जीवन दान ।
इसीलिये क्या होगई माता शूद्र समान ॥ १३७ ॥
सारे धंधे शुद्ध हैं सब में है ईमान ।
उच्च नीच का भेद क्यों सब हैं एक समान ॥ १३८ ॥
सुख-साधन लेकर किया सुख-साधन का दान ।
यही अर्थ-विनियोग है धंधे की पहिचान ॥ १३९ ॥
जो सुख-साधन के लिये हैं आवश्यक कार्य ।
वे सब धंधे शुद्ध हैं जीवन को अनिवार्य ॥ १४० ॥
वर्ण व्यवस्था थी कभी धंधे का प्रतिबन्ध ।
किन्तु न उसमें थी कभी जातिभेद की गंध ॥ १४१ ॥
सबको धंधा मिलसके रहें नहीं बेकार ।
धंधे में सब हों निपुण वर्ण-व्यवस्था सार ॥ १४२ ॥
किन्तु किये प्रतिबन्ध ये ईश्वर ने बेकार ।
मिल न सकी रुचि योग्यता कुलक्रम के अनुसार ॥ १४३ ॥
एक तरफ रुचि योग्यता वृत्ति दूसरी ओर ।
खींचतान ऐसी मची मचा निरर्थक शोर ॥ १४४ ॥

वृत्तिभेदके वंश का छोड़ो सब अभिमान।
जनसेवा ईमानपर रक्खो अपना ध्यान ॥ ६७० ॥
जो जनसेवा के लिये हो आवश्यक कर्म।
रुचि अवसर अनुसार ही उसमें लगना धर्म ॥ ६७१ ॥
कैसे होंगे नीच वे सर्व-हितंकर कर्म।
यदि हिन्दू करता घृणा डूबा हिन्दू धर्म ॥ ६७२ ॥

गीत

रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया।
जाति पाँति के पचड़े में पड़ हिन्द नहीं भज पाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ ६७३ ॥
जिसने की परिचर्या तेरी उसको खूब दबाया।
अपने ही भाई बहिनों को शूद्र अछूत बनाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ ६७४ ॥
जब तक अपने रहे तभी तक उन्हें खूब ठुकराया।
ज्यों ही वे होगये पराये त्यों ही मान बढ़ाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ ६७५ ॥
मानव की मानवता छीनी पशु से अधिक गिराया।
छुआछूत के चक्कर में पड़ तूने धर्म डुबाया ॥
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ ६७६ ॥

गीत

तूने धर्म डुबाया, हिन्दू, छुआछुत लेआया।
व्यापक ब्रह्म भुलाया, हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ ६७७ ॥
दूध गायका तू पीजाता।
फिर भी गाय नहीं होपाता ॥
पर पानी मे जाति डूबती क्या अन्धेर मचाया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ ६७८ ॥
धंधे की क्या जाति बनाई।

अलग किये सब भाई भाई ॥
माया की पूजा करके फिर ब्रह्म ब्रह्म चिल्लाया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १७९ ॥
ब्रह्म भटकता मारा मारा ।
मुर्दा है वेदान्त बिचारा ॥
तेरे रग रग में छाई है जाति पांति की माया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १८० ॥

गीत

जतिपांति का छोडो ध्यान।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८१ ॥
विप्रछत्र विट् शूद्र समान ।
सब का है उपयोग महान।
मानवता का गाये गान ।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८२ ॥
जाति पांति में है हैवान।
उच्च नीचता में शैतान ॥
पर हम कहलाते इन्सान
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८३ ॥
सब करते ईश्वर का ध्यान।
सब के मनमें है भगवान ।
एक सरीखे हैं अरमान ॥
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८४ ॥
सच्चे हिन्दू बनो महान ।
सच्चे मुसल्मान क्रिस्तान ।
लहर लहर में गूंजे तान ।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८५ ॥

ज्ञातिभेद

एक जाति सब आदमी वृथा बने बहुभेद ।
ज्ञातिभेद कारण बने तुच्छ तुच्छ विच्छेद ॥ १८६ ॥

धंधे के प्रतिबन्ध जब हुए टूटकर नष्ट ।
वर्ण व्यवस्था होगई तभी ध्येय से भ्रष्ट ॥ १४५ ॥
कर्महीन कुलवंश का था न तनिक भी अर्थ ।
प्राण गया मुर्दा रहा जो समाज को व्यर्थ ॥ १४६ ॥
मुर्दे की दो हालतें गड़े जलाया जाय ।
यदि मुर्दा घर में रहा घर पर चढ़ी बलाय ॥ १४७ ॥
मुर्दे की दुर्गंध से हो सब घर बीमार ।
जिंदे भी मुर्दे बने हो मुर्दा संसार ॥ १४८ ॥
वर्ण व्यवस्था का रहा जब निष्प्राण शरीर ।
क्यों न जलाई जाय तब हटे जगत की पीर ॥ १४९ ॥
वर्ण व्यवस्था जब बनी तब थी कर्म प्रधान ।
कर्म गया तब क्यों रहे व्यर्थ नाम का गान ॥ १५० ॥
व्यर्थ नाम के गान से आया वृथा घमंड ।
गुण संयम के सामने हृदय हुआ उद्दंड ॥ १५१ ॥
टूटा गुण सन्मान सब टूट गया सहयोग ।
तब समाज को होगया संग्रहणी का रोग ॥ १५२ ॥
दाना पचा न एक भी लगे दस्तपर दस्त ।
उन्नति सब अवनति बनी हुआ भाग्य रवि अस्त ॥ १५३ ॥
छिन्नभिन्न तब होगया सारा हिन्दसमाज ।
खड़े खड़े लुटने लगी मानवता की लाज ॥ १५४ ॥
वृत्तिभेद की बात तो रही दूर ही दूर ।
जीवन के सम्बन्ध तक मिटे हुए सब चूर ॥ १५५ ॥
वर्ण व्यवस्था की जगह थी केवल बाजार ।
छिन्न भिन्न पर होगया खानपान व्यवहार ॥ १५६ ॥
जातिभेद के नामपर फैली छूआछूत ।

मानव के सिर पर चढा छुआछूत का भूत ॥ ९५७ ॥
तब मानव मद मोह का पूरा हुआ शिकार ।
पशुओं से भी कम रहा मानव का अधिकार ॥ ९५८ ॥
गाय भैंस का दूध तो पीते लगे न देर ।
मानव जलसे हो घृणा यह कैसा अन्धेर ॥ ९५९ ॥
हाथ किसी का भी रहे इससे जाति न जाय ।
मानव तो मानव रहे दूध पिलाती गाय ॥ ९६० ॥
मुर्दों का भक्षण करें फिर भी जाति न जाय ।
तब फिर जाये जाति क्यों छूकर जीवित काय ॥ ९६१ ॥
मानव मानव में न हो ऐसी छूआछूत ।
छूआछूत जहा, वहा–चढा पाप का भूत ॥ ९६२ ॥
वृत्तिभेद की जातियाँ हैं सब ही बेकार ।
जातिपांति सब तोड़कर करो खुला व्यवहार ॥ ९६३ ॥
यथा जो चाहे करो रुचि रुचि के अनुसार ।
भोजन और विवाह में मनको रखो उदार ॥ ९६४ ॥
जातिपाति देखो नहीं देखो रुचिका अन्न ।
खानपान व्यवहार में सब से रहो प्रसन्न ॥ ९६५ ॥
गुणगण की अनुकूलता और जहा हो प्यार ।
जाति पाति सब भूलकर हो शादी व्यवहार ॥ ९६६ ॥
सदाचार सतसग वय भोजन एकविचार ।
सह्यजीविका स्वास्थ्य धन शिक्षण शिष्टाचार ॥ ९६७ ॥
सद्भावा सौंदर्य गृह पथ कर्मठता चाह ।
जहा रहें अनुकूल ये करना वहीं विवाह ॥ ९६८ ॥
जातिपाति सब व्यर्थ हैं ये गुण करें चुनाव ।
जातिपाति के मेल का इन में अन्तर्भाव ॥ ९६९ ॥

वृत्तिभेदके वंश का छोड़ो सब अभिमान।
जनसेवा ईमानपर रक्खो अपना ध्यान ॥ १७० ॥
जो जनसेवा के लिये हो आवश्यक कर्म।
रुचि अवसर अनुसार ही उसमें लगना धर्म ॥ १७१ ॥
कैसे होंगे नीच वे सर्व हितंकर कर्म।
यदि हिन्दू करता घृणा डूबा हिन्दू धर्म ॥ १७२ ॥

गीत

रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया।
जाति पाँति के पचड़े में पड़ हिन्द नहीं भज पाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ १७३ ॥
जिसने की परिचर्या तेरी उसको खूब दबाया।
अपने ही भाई बहिनों को शूद्र अछूत बनाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ १७४ ॥
जब तक अपने रहे तभी तक उन्हें खूब ठुकराया।
ज्यों ही वे होगये पराये त्यों ही मान बढ़ाया।
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ १७५ ॥
मानव की मानवता छीनी पशु से अधिक गिराया।
छुआछूत के चक्कर में पड़ तूने धर्म डुबाया॥
रे हिन्दू तूने हिन्दू धर्म लजाया ॥ १७६ ॥

गीत

तूने धर्म डुबाया, हिन्दू, छुआछुत लेआया।
व्यापक ब्रह्म भुलाया, हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १७७ ॥
दूध गायका तू पीजाता।
फिर भी गाय नहीं होपाता॥
पर पानी से जाति डूबती क्या अन्धेर मचाया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १७८ ॥
धंधे की क्या जाति बनाई।

अलग किये सब भाई भाई ॥
माया की पूजा करके फिर ब्रह्म ब्रह्म चिल्लाया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १७२ ॥
ब्रह्म भटकता मारा मारा।
मुर्दा है वेदान्त बिचारा ॥
तेरे रग रग में छाई है जाति पांति की माया।
हिन्दू, छुआछूत लेआया ॥ १८० ॥

गीत

जातिपाति का छोड़ो ध्यान।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८१ ॥
विप्रछत्र विट् शूद्र समान।
सब का है उपयोग महान।
मानवता का गाये गान।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८२ ॥
जाति पाति में है हैवान।
उच्च नीचता में शैतान ॥
पर हम कहलाते इन्सान
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८३ ॥
सब करते ईश्वर का ध्यान।
सब के मनमें है भगवान।
एक सभी के हैं अरमान ॥
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८४ ॥
सच्चे हिन्दू बनो महान।
सच्चे मुसलमान क्रिस्तान।
लहर लहर में गूंजे तान।
एक सभी मानव सन्तान ॥ १८५ ॥

ज्ञातिभेद

एक जाति सब आदमी वृथा बने बहुभेद।
ज्ञातिभेद कारण बने तुच्छ तुच्छ विच्छेद ॥ १८६ ।

कुल कुटुम्ब छूटा जहां छूट गया निजधाम ।
ग्राम नगर के नाम पर बना जाति का नाम ॥ १८७ ॥
एक वंश फैला बहुत विकट हुआ विस्तार ।
बढ़ी संकुचितता बहुत जाति हुई तैयार ॥ १८८ ॥
नया धर्म संस्कृति नई पाकर बना गिरोह ।
नई जाति तब बनगई सब से हुआ विछोह ॥ १८९ ॥
दलबन्दी ऐसी हुई टूट गया सहयोग ।
मन के विकट अपथ्यसे लगा जातिका रोग ॥ १९० ॥
इधर रूढ़ि की मूढ़ता फैला उधर सुधार ।
दलबन्दी ऐसी हुई हुई जाति तैयार ॥ १९१ ॥
जातिभेद ये व्यर्थ हैं नामभेद विस्तार ।
मानव एक कुटुम्ब है मानवता आभार ॥ १९२ ॥
एक सभी की वृत्तियाँ एक रूप आकार ।
फिर भी घर के होगये टुकड़े कई हजार ॥ १९३ ॥
आपसका छूटा सभी तब शादी व्यवहार ।
खानपान का भी सभी भूले शिष्टाचार ॥ १९४ ॥
मचा तृणताडव यहां नाचा खूब घमंड ।
धर्म नामपर रहगया घृणापूर्ण पाखंड ॥ १९५ ॥
आया चौका पंथ यह प्रेमधर्म का चोर ।
घर घर में तब मचगया 'दूर दूर' का शोर ॥ १९६ ॥
भीतर गन्दापन रहा बदबू रही अपार ।
शुद्धि नामपर होगया मृषा घृणा विस्तार ॥ १९७ ॥
मत्स्य मांस भक्षण करें फिर भी शुद्धि न जाय ।
छूने से छुट जाय पर ऐसी शुद्धि बलाय ॥ १९८ ॥
चूल्हे चूल्हे पर हुई जाति जाति निर्माण ।

मानवता मुर्दा हुई निकल गये सब प्राण ॥ ९९९ ॥
फैले हुए कुटुम्ब पर लगी जाति की छाप ।
चिथडे चिथडे होगया मानव अपने आप ॥ १००० ॥
अपनी अपनी ज्ञाति में होने लगे विवाह ।
भाईबहिन सम्बन्ध की रही न कुछ पर्वाह ॥ १००१ ॥
वैवाहिक सम्बन्ध का यही उचित व्यवहार ।
ज्ञाति दूसरी चाहिये वैधक के अनुसार ॥ १००२ ॥
फैलगया अविवेक जब हृदय हुआ अनुदार ।
हुआ प्रेम की सौतसा ज्ञातिभेद तैयार ॥ १००३
ज्ञाति जाति के भेद ये मानवता की सौत ।
मानव के घर में घुसी मानवता ी मौत ॥ १००४ ॥
मानवता जिन्दी बने जातिभेद मिटजाय ।
मानव के आकार में मानवता दिखलाय ॥ १००५ ॥

गीत

आओ मनुष्य बन जायें गायें मनुष्यता का गान ।
हम भूलें गोरा काला ।
जग हो न रंग मतवाला ।
हम पियें प्रेम का प्याला ।
हो द्वीप द्वीप में राष्ट्रराष्ट्र मे एक सराखा मान ।
आओ मनुष्य बनजायें गाये मनुष्यताका गान ॥ १००६॥
यह छूआछूत हटायें ।
सब विप्रशूद्र मिलजायें ।
भाई भाई कहलायें ।
हों काम जुदे हों नाम जुदे पर एक सभी सन्तान ।
आओ मनुष्य बनजायें गाये मनुष्यता का गान ॥१००७॥
हम भेदभाव सब छोडें

हम जातिपाति सब तोड़ें ।
हम सब से नाता जोड़ें ।
हो गुण गण का ही ध्यान करें शादी या भोजनपान ।
आओ मनुष्य बनजायें गायें मनुष्यता का गान ॥१००८॥

घर घर रिश्ते फैलाये ।
मिलकर सब खाना खाये ।
शादी का मेल मिलायें ।
हैवान मिटें शैतान मिटें हम बनजायें इन्सान ।
आओ मनुष्य बनजायें गायें मनुष्यता का गान ॥१००९॥

हो सारा विश्व हमारा ।
सब से हो भाईचारा ।
सब जगह प्रेम की धारा ।
चढ़जाय प्रेम का रंग ।
सभी के संग ।
अंग से अंग ।
मिलें भगवान ।
आओ मनुष्य बनजायें गाये मनुष्यता का गान ॥ १०१०॥

—ॐ—

पांचवाँ अध्याय

नर नारी समभाव

गीत

नर आधा मानव आधा मानव नारी।
दोनो मिलकर पूरे मानव अवतारी ॥ १०११ ॥

जब ये दोनों बनजायँ प्रेम सहयोगी।
आनन्द कन्द जग बने बने रस भोगी।
जब दोनों के मन रह न सकें सयोगी।
लुटजाय जगत का स्वास्थ्य बने जग रोगी।

ये चिदानन्द के रूप समन्वय धारी।
नर आधा मानव आधा मानव नारी ॥ १०१२ ॥

नर ने निमित्त बन जब कि सम्हाला बाहर।
नारी ने बनकर उपादान पकड़ा घर।
नारी ने जब वात्सल्य वहाया झरझर।
तब झरने का बनगया किनारा सा नर।

बह चली प्रेम की धार सकल दुखहारी।
नर आधा मानव आधा मानव नारी ॥ १०१३ ॥

दोनों की यद्यापि जुदी जुदी है काया।
पर दोनों की सब मिली जुली है माया।
दोनों ने ही मिलकर ससार बसाया।
दोनों ने सुख दुख बांट बांट कर खाया।

दोनों दोनों के सेवक या अधिकारी।
नर आधा मानव आधा मानव नारी ॥ १०१४ ॥

दोनो में कोई छोटा या न बड़ा है।
दोनों समान खंभों पर विश्वखड़ा है।
संकट में दोनों का दिल बड़ा कड़ा है।
दोनों ने मिलकर जीवन युद्ध लड़ा है।

अन्योन्य सहायक दोनों प्यारे प्यारी ।
नर आधा मानव आधा मानव नारी ॥ १०१५ ॥
धर्मार्थ काम में दोनों ही सहभागी ।
दोनों की है जिन्दगी प्रेमरस पागी ।
सर्वस्व दानकर बनते दोनों त्यागी ।
वैकुंठ बुलाने में दोनों अनुरागी ।
यह सत्य अहिंसा की जोड़ी सुखकारी ।
नर आधा मानव आधा मानव नारी ॥ १०१६ ॥

दोहा

मानवता के मूल गुण नर नारी में एक ।
कर्मक्षेत्र के भेद से दिखते रूप अनेक ॥ १०१७ ॥
संयम बुद्धि विवेक का दोनों में विस्तार ।
क्रोध मान छल लोभ के दोनों ही आधार ॥ १०१८ ॥
गुण दुर्गुण दोनों भरे दोनों एक समान ।
फिर भी जो वैषम्य है उसका सरल निदान ॥ १०१९ ॥
प्रजनन नारी में अधिक शिशु सेवा का भार ।
मानव के निर्माण में लगता तन का सार ॥ १०२० ॥
इसी तपस्या से हुई नारी कुछ कमजोर ।
इसीलिये कम जासकी वह बाहर की ओर ॥ १०२१ ।
मानव के निर्माण का बड़ा कठिन था कार्य ।
इसीलिये गृहवास था नारी को अनिवार्य ॥ १०२२ ॥
ऐसे सेवा कार्य से क्यों हो नारी हीन ।
छिन जायें अधिकार क्यों क्यों बनजाये दीन ॥ १०२३ ॥
यदि सेवा से हो अधिक पशुबल का अधिकार ।
तब तो मानव जग हुआ पशुओं का संसार ॥ १०२४ ॥
नर नारी के मूल्य में पशुबल का न विचार ।

सेवा से ही मूल्य है सेवा से अधिकार ॥ १०२५ ॥
सेवा दोनों की अधिक अपना अपना ढंग।
एक दूसरे की कमी पूर्ण करें रह संग ॥ १०२६ ॥
अपने अपने रूप का करलें दोनों ज्ञान।
बने नहीं हैवान या बनें नहीं शैतान ॥ १०२७ ॥
हो न किसी में दीनता हो न वृथा अभिमान।
विनयभाव से हो भरा निज गौरव का ज्ञान ॥ १०२८ ॥
कार्य क्षेत्र हो भिन्न पर हों न विषम अधिकार।
लिंग विषमता से न हों झूठे शिष्टाचार ॥ १०२९ ॥
घूंघट पर्दा बन्द हो रहे न झूठी लाज।
संयम रूपी लाज हो मानवता का साज ॥ १०३० ॥
संयम रूपी लाज तो नरनारी की एक।
तब क्यों होना चाहिये पर्दे का अतिरेक ॥ १०३१ ॥
पति से तो पर्दा नहीं बाकी से बेकार।
पिता पुत्र भाई बना सकल पुरुष-संसार ॥ १०३०

गीत

यह किससे पर्दा नारी !
पति है तेरा अंग सरीखा दोनों प्यारे प्यारी।
यह किससे पर्दा नारी ॥ १०३३ ॥
बड़ी उमर का पुरुष पिता है छोटी वय का बच्चा।
समवयस्क है बन्धु सरीखा फिर क्यों हो दिल कच्चा।
माता पुत्री भगिनी तू क्यों फिरे लाज की मारी।
यह किससे पर्दा नारी ॥ १०३४ ॥
नारीपन क्या पाप समझती जिसकी लज्जा आती।
मानवता की मूरति को क्यों खुद ही पाप बनाती ॥
मुँह घूघट की ओट छिपाति बनी दीन बेचारी।

यह किससे पर्दा नारी ॥ १०३५ ॥
जब कि शील का तेज चढ़ा है तेरे मुख मण्डल पर।
बुरी नजर से कौन देख सकता है घर या बाहर ॥
जो देखेगा वही पाप का ताप सहेगा भारी ।
यह किससे पर्दा नारी ॥ १०३६ ॥
तुझे देखते ही पापी की नजरें सब झुकजायें
मन की पाप वासनायें सब पलभर में फुकजायें ॥
तेरे दर्शन से सारा जग बने पवित्राचारी ।
यह किससे पर्दा नारी ॥ १०३७ ॥

गीत

यह घूंघट का पट खोल ।
अधीसी बनकर मत चल तू राह टटोल टटोल ।
यह घूंघट का पट खोल ॥ १०३८ ॥
रख पवित्र तू अपने मनको ।
कर मत उत्सुक जग जनजन को ।
पिता समझकर बन्धु समझकर निर्भय मनमें बोल ।
यह घूंघट का पट खोल ॥ १०३९ ॥
पट में क्या आंखें छिपपाती ।
छन छन नजरें आती जाती ।
घूर घूर कर तीरंदाजी होती है विषघोल ।
यह घूंघट का पट खोल । १०४० ॥
मुँह को शीलधर्म कहने दे ।
आंखों का पर्दा रहने दे ।
आंखों का पर्दा न रहा तो घूंघट का क्या मोल ।
यह घूंघट का पट खोल ॥ १०४१ ॥
स्वच्छ हवा तनमें जाने दे ।
दुनिया के अनुभव आने दे ।
साहस शील धैर्य के बलपर उछले रस कल्लोल ।
यह घूंघट का पट खोल ॥ १०४२ ॥

गीत—४०

यह कैसा शिष्टाचार ।

जिससे मात पिता से होता विनयहीन व्यवहार ।
यह कैसा शिष्टाचार ॥ १०४३ ॥

विनयधर्म के लिये अगर मुखमण्डल पर आता पट ।
मातपिता तो परम पूज्य हैं फिर न लगा क्यों घूंघट ॥
उनका क्यों अपमान कि जिनका हैं असीम उपकार ।
यह कैसा शिष्टाचार ॥ १०४४ ॥

पालपोस कर बड़ा बनाते इसीलिये क्या छोटे ?
वत्सलता की धार बहाते इसीलिये क्या खोटे ?
कैसी यह कृतघ्नता जिसमें ठोकर खाता प्यार ।
कैसा यह शिष्टाचार ॥ १०४५ ॥

जेठ बना है बड़े बन्धु सा देवर छोटा भाई ।
ससुर पिता सा, ननँद बहिन सी, सास बनी है माई ॥
फिर क्यों यह व्यवहार-विषमता फैलाई बेकार ।
यह कैसा शिष्टाचार ॥ १०४६ ॥

विनय नीति का रूप बदलदे मानवता दिखलादे ।
झूठे शिष्टाचारों के ये सब अन्धेर मिटादे ॥
वह ससुराल रहे या पीहर रहे एक व्यवहार ।
यह कैसा शिष्टाचार ॥ १०४७ ॥

गीत—४१

ओ नारी, ओ पर्दानशीन !

झूठी लज्जा में फसकर के क्यों बनी दीन गौरवविहीन ।
ओ नारी, ओ पर्दानशीन ॥ १०४८ ॥

कब तक तू धूप बचायेगी ।
अंधी बन दिवस गमायेगी ।
क्या बनी मोम की पुतली तू, जो धूप पड़े गल जायेगी ॥

करले विवेक से छानबीन ।
ओ नारी, ओ पर्दानशीन ॥ १०४९ ॥
क्यों साहसहीन बना है मन ।
क्यों लजनू सा मुरझाता तन ।
जब मानव का अवतार लिया तब क्यों ऐसा कायर जीवन ॥
क्यों ज्ञानहीन क्यों पराधीन ।
ओ नारी, ओ पर्दानशीन ॥ १०५० ॥
करदे पर्दे को छार छार ।
मिट जाये सारा अन्धकार ।
तू स्वस्थ बने बलवान बने जीवनभर का उतरे बुखार ।
यह जीवन बनजाये नवीन ।
ओ नारी, ओ पर्दानशीन ॥ १०५१ ॥

दोहा

घूंघट पर्दा बन्द हो संयम का हो ध्यान ।
नरनारी दोनों करें दोनों का सन्मान ॥ १०५२ ॥
सेवा का ही मूल्य हो रहें उचित अधिकार ।
लिंगभेद से हो नहीं कहीं विषम व्यवहार ॥ १०५३ ॥
नारी हो गृह-सेविका किन्तु न हो गृह-दास ।
मानव के अनुसार ही वह कर सके विकास ॥ १०५४ ॥
साधारण नारी रहे गृह-कार्यों में लीन ।
अर्थदास पर हो नहीं टके टके को दीन ॥ १०५५ ॥
उत्तराधिकारित्व भी हो नारी को प्राप्त ।
गुजर बसर की बात ही हो न उसे पर्याप्त ॥ १०५६ ॥
पति के मरते ही नहीं वह बनजाये दीन ।
अधिकारी रह बन सके वह सेवा में लीन ॥ १०५७ ॥
नारी को भी मिल सकें जन्मसिद्ध अधिकार ।

श्रम सेवा का मूल्य हो न्याय नीति अनुसार ॥ १०५८ ॥
विधवा के मन में रहे यदि विवाह की चाह ।
तो मर्जी से कर सके अपना पुनर्विवाह ॥ १०५९ ॥
यदि उसकी इच्छा न हो तो मर्जी की बात ।
किन्तु न होना चाहिये अधिकारों का घात ॥ १०६० ॥
विधवा विधुर समान हैं हैं समान अधिकार ।
क्यों हो नारी के लिये बाधक लोकाचार ॥ १०६१ ॥
धर्माज्ञा कानून या लोकाचार विधान ।
नारी के अधिकार हों सब में पुरुष-समान ॥ १०६२ ॥
धर्मक्रिया पंचायतें या हो शासन कार्य ।
नारी का सहयोग है इन सब में अनिवार्य ॥ १०६३ ॥
जैसी जिसमें योग्यता जैसा गुण-भंडार ।
वैसा उसका मूल्य हो जनहित के अनुसार ॥ १०६४ ॥
लिंगभेद से हों नहीं न्यूनाधिक अधिकार ।
अर्थकाम में धर्म में हो समान व्यवहार ॥ १०६५ ॥
स्वर्ग मुक्ति वैकुण्ठ या ब्रम्हलोक का वास ।
नारी तन से भी हुए सारे आत्म विकास ॥ १०६६ ॥
हीन न समझो जगतमें कोई नारी पक्ष ।
मोक्षमार्ग की प्रगति में नारी भी हैं दक्ष ॥ १०६७ ॥
तीर्थंकर तक बन सके करने जग उद्धार ।
नारी तन में भी करें सब गुण गण अवतार ॥ १०६८ ॥

रोला

त्याग वीरता सहन शीलता तप चतुराई ।
ब्रह्मचर्य वात्सल्य आदि गुण गण सुखदाई ॥
नर नारी में हैं समान कुछ भेद नहीं है ।

व्यक्तिभेद से भेद जगत में सभी कहीं है ॥ १०६९ ॥
हैं ऐसी नारियाँ नरों से बढ़जातीं जो ।
गुणगण पारावार अधिक आदर पातीं जो ।
हैं ऐसे भी पुरुष नारियों से बढ़जाते ।
गुण गण के भंडार अधिक आदर जो पाते ॥ १०७० ॥
नारीमात्र न हीन नहीं नरमात्र हीन है ।
दोनो हैं स्वाधीन परस्पर या अधीन हैं ॥
एक शक्ति की मूर्ति एक है शिव की मूरति ।
दोनो हैं बेजोड़ परस्पर हैं पत्नी पति ॥ १०७१ ॥
पति का स्वामी अर्थ पकड़कर अगर रहोगे ।
तो पत्नी का अर्थ स्वामिनी क्यों न कहोगे ॥
है अद्भुत सम्बन्ध परस्पर दोनों स्वामी ।
या हैं दोनों दास परस्पर या अनुगामी ॥ १०७२ ॥
यद्यपि कुछ वैषम्य यहां होरहा ज्ञात है ।
किन्तु उच्चता और नीचता की न बात है ।
दोनों ही निज निज विशेषता लिये हुए हैं ।
दोनों ही अवलम्ब परस्पर दिये हुए हैं ॥ १०७३ ॥
नर की जो त्रुटि उसे पूर्ण करती है नारी ।
नारी नर के लिये इसीसे है दुखहारी ॥
जो नारी की कमी उसे नर पूरित करता ।
इस प्रकार नर सकल दुःख नारी के हरता ॥ १०७४ ॥
जब हैं दोनों जुदे जुदे तब निपट अधूरे ।
जब दोनों अन्योन्य सहायक तब हैं पूरे ॥
मानव के दो अंग समझलो हैं नरनारी ।
दोनों ही निज निज विशेषता में हैं भारी ॥ १०७५ ॥

सामाजिक सुविधार्थ कार्य का भेद बनाया।
उच्चनीच का भेद नहीं है इसमें आया ॥
कोई घर में रहे रहे कोई या बाहर ।
अपना अपना काम करें मिलकर नारी नर ॥ १०७६ ॥
कार्यभेद यह रहे हानि की बात नहीं है ।
सब की सुविधा जहा सत्य की बात वहीं है ॥
जिसमें जो हो योग्य वहा वह हो अधिकारी ।
पर इसका यह अर्थ नहीं 'हो अत्याचारी' ॥ १०७७ ॥
अपना अपना काम सम्हालें मिले रहें पर ।
जुदे रहें वादित्र मगर हो मिला हुआ स्वर ॥
नीच ऊंचका भेदभाव धरना न चाहिये ।
समझौते का दुरुपयोग करना न चाहिये ॥ १०७८ ॥
नारी तो है भोग्य नहीं यह समझो मनमें ।
और न गणना करो कभी नारी की धन में ॥
नारी नर के तुल्य भोज्य या भोजक दोनों ।
विश्वरंग के हैं समर्थ ये योजक दोनों ॥ १०७९ ॥
नारी को यदि पुरुष परिग्रह जाना तुमने ।
उसको दासी तुल्य भूलकर माना तुमने ॥
तो समझो अन्धेर मचाना ठाना तुमने ।
सत् शिव सुन्दर का न रूप पहिचाना तुमने ॥ १०८० ॥

दोहा

नारीपन छोटा नहीं नारीपक्ष न हीन ।
दोनों ही संसार की समसेवा में लीन ॥ १०८१ ॥
करो न नारी पक्ष का नर से कम सन्मान ।

नारी के सम्बन्ध से करो न गाली दान ॥ १०८२ ॥
'साला, 'ससुरा' गालियाँ असभ्यता की खान ।
शब्द शब्द में भर रहा, नारी का अपमान ॥ १०८३ ॥
कन्या के सम्बन्ध से क्यों कुटुम्ब हों हीन ।
कन्यावालों ने दिया एक कुटुम्ब नवीन ॥ १०८४ ॥
कितना यह उपकार है कितना है यह दान ।
बदले में अपमान हो यह अन्याय महान । १०८५ ॥
दूर करो अन्याय यह हो समान व्यवहार ।
नर नारी समभाव मय हों सब शिष्टाचार ॥ १०८६ ॥
नारी में भी चाहिये निज गौरव का भान ।
नर नारी समभाव का रहे हृदय में ध्यान ॥ १०८७ ॥
भाई का आदर न हो देवर पूजा पाय ।
नारीपन के साथ यह नारी का अन्याय ॥ १०८८ ॥
भाभी की इज्जत न हो ननदी पूजी जाय ।
नारीपन के साथ यह नारी का अन्याय ॥ १०८९ ॥
नारी के सम्बन्ध से क्यों हो कोई हीन ।
नारी नारीपक्ष में क्यों करती मन दीन । १०९० ॥
नर नारी समभाव का रक्खें सब ही ध्यान ।
किन्तु न क्षणभर भूलना गुरुजन का सन्मान १०९१ ॥
गुणगुरु वयगुरु आदि का रहे उचित सत्कार ।
विनयभाव से युक्त हों सारे शिष्टाचार १०९२ ॥
कहा कहा कर्तव्य क्या इसका भी हो ध्यान ।
यदि भूला कर्तव्य तो गया मान सन्मान ॥ १०९३ ॥
जो नारी बन जायगी विलासिता की खानि ।
नर नारी समभाव की होगी उससे हानि ॥ १०९४ ॥

सुन्दरता का मूल्य यदि नारी करे वसूल।
तो रूपाजीवा हुई नारीपन सब धूल ॥ १०९५ ॥
कर्मठता सेवा कला सदाचार सुविचार।
नारी गौरव के लिये ये सच्चे आधार ॥ १०९६ ॥
पहिले तो कर्तव्य हो फिर गौरव का ध्यान।
नर नारी समभाव का है यह उचित विधान ॥ १०९७ ॥
नारी बनी विलासिनी उबल पड़ा उन्माद।
भूलगई कर्तव्य सब जीवन तब बर्बाद ॥ १०९८ ॥
पहिले सब कर्तव्य हों पीछे रहे विलास।
अर्थकाम मिलकर रहें रहें धर्म के दास ॥ १०९९ ॥
नारी में नारीत्व ही बनकर रहे प्रधान।
पर नरत्व भी चाहिये तभी उचित सन्मान ॥ ११०० ॥
नर में नरपन मुख्य हो तनमन के अनुसार।
पर जब नारीपन मिले तब पूरा अवतार ॥ ११०१ ॥
उभयलिंग जीवन बने उभयलिंग संसार।
उभयलिंग बनकर रहे तीर्थंकर अवतार ॥ ११०२ ॥
भावुकता संयम कला परिचर्या गुणगान।
नारीपन के चिन्ह ये इनमें है भगवान ॥ ११०३ ॥
साहस बुद्धि विवेक बल व्यापक दृष्टि उदार।
ये नरपन के चिन्ह हैं ईश्वर के अवतार ॥ ११०४ ॥
उभयलिंग जीवन बने तब जीवन निर्माण।
नर नारी समभाव से तब जग का कल्याण ॥ ११०५ ॥

गीत

उभयलिंग अवतार। ले तू उभयलिंग अवतार।
नर नारी समभावी बनकर कर जग का उद्धार।

ले तू उभयलिंग अवतार ॥ ११०६ ॥
प्रथम कला भक्ति सेवा से बन नारीत्व-निधान।
सारा जग कुटुम्ब बनजाये करदे नया विधान ॥
घर घर में सुन्दरता छाये घट घट में हो प्यार।
ले तू उभयलिंग अवतार ॥ ११०७ ॥
संकट में साहस दिखलादे रख कर्तव्य विवेक।
नर अवतारी बनकर रख तू परम सत्य की टेक ॥
विपत् प्रलोभन के दल आये बढ़ तू ठोकर मार।
ले तू उभयलिंग अवतार ॥ ११०८ ॥
शिव है स्वयं अर्धनारीश्वर नरनारीत्व निधान।
सत्येश्वर भगवती अहिंसा युगलरूप भगवान ॥
नर नारी ये पूर्ण ब्रह्ममें होते एकाकार।
ले तू उभयलिंग अवतार ॥ ११०९ ॥
नर नारी दोनों समान हैं कोई रक न राव।
घर बाहर सब जगह बतादे नरनारी समभाव ॥
नर नारी का जहा समन्वय वहीं सुखी संसार।
ले तू उभयलिंग अवतार ॥ १ १० ॥

——*——

छट्ठा अध्याय

अहिंसा

गीत—४३

आहिंसा ही है पहिला धर्म ।
कर्तव्यों की यही कसौटी यही धर्म का मर्म ।
आहिंसा ही है पहिला धर्म ॥ १११९ ॥
मानव मात्र कुटुम्ब बनाओ जियो और जीने दो ।
कणकण में रस भरा हुआ है पियो और पीने दो ।
पशु पक्षी भी बने कुटुम्बी हृदय बनाओ नर्म ।
आहिंसा ही है पहिला धर्म ॥ १११२ ॥
हिंसा से क्यों नरक बनाते दिखलाते शैतानी ।
मानवता क्यों लजारहे हो दिखलाकर हैवानी ॥
मानवता खोई हिंसक ने बन करके बेशर्म ।
आहिंसा ही है पहिला धर्म ॥ १११३ ॥
हिंसक ही है परम नारकी हिंसक जीवन रोगी ।
परम आहिंसक ही योगी है स्वर्ग मोक्ष का भोगी ॥
भूतल पर ही स्वर्ग नचेगा करो आहिंसक कर्म ।
आहिंसा ही है पहिला धर्म ॥ १११४ ॥

व्यवहार पंचक—

दोहा

वर्धन रक्षण हो सदा या विनिमय व्यापार ।
पर भक्षण तक्षण न हो करते रहो विचार ॥ १११५ ॥
भजते रहो विवेक से यह पचक व्यवहार ।
कार्याकार्य-निकष यही यही अहिंसा-सार ॥ १११६ ॥

अहिंसा की साधना—

परम आहिंसा के लिये रखो हृदय में प्यार ।

विविध साधनाएँ करो हो सब का उद्धार ॥ १११७ ॥
मन जीवन की साधना करती आत्मोद्धार ।
लोक साधना से बने तीर्थंकर अवतार ॥ १११८ ॥

मन साधना—

करलो मनकी साधना रह पाये न कषाय ।
मोह मान छल क्रोधका दाग न लगने पाय ॥ १११९ ॥

निर्मोहता—

विश्वप्रेम मनमें रहे किन्तु नहीं हो मोह ।
कर्तव्याकर्तव्य का करलो ऊहापोह ॥ ११२० ॥
मोह परम अविवेकमय उसकी तीखी धार ।
प्रेम विवेकाधार है फूलों सा सुकुमार ॥ ११२१ ॥
मोह पाप का बीज है प्रेम पुण्य का योग ।
प्रेम परम सहयोग है मोह परम दुर्भोग ॥ ११२२ ॥
मोह स्वार्थ के संग है प्रेम न्याय के संग ।
मोह उछलता खून है प्रेम वसंती रंग ॥ ११२३ ॥
मोह उलटता है सदा बनजाता है बैर ।
प्रेम सदा आनन्द मय सदा स्वर्ग की सैर ॥ ११२४
जहां मोह का राज्य है वहां विकट जंजाल ।
प्रलोभनों में फंस रहे जीवन के कंगाल ॥ ११२५ ॥
भोगेगा वह भोग क्या मोही निपट अजान ।
जो कि भोगके ही लिये करता जीवन दान ॥ ११२६ ॥
प्रेमी ही योगी सदा करता है सहभोग ।
योग भोग शामिल रहे निकट न आया रोग ॥ ११२७ ॥

गीत—४४

करले सब से प्यार । अमोही, करले सब से प्यार ॥

मेरा तेरा भेद भुलाकर।
विश्वप्रेम का गाना गाकर॥
बनकर तू निष्पक्ष विवेकी, कर सब का उद्धार।
अमोही करले सबसे प्यार॥ ११२८॥

क्यों तू जग से व्यर्थ भागता।
विश्वप्रेम है वीतरागता॥
अरे अमोही वीतराग बन, कर सब का उपकार।
अमोही करले सब से प्यार॥ ११२९॥

दु स्वार्थी में भक्ति नहीं हो।
भोगों में आसक्ति नहीं हो॥
तृष्णा मोह वैर का त्यागी बनकर कर सहकार।
अमोही करले सब से प्यार॥ ११३०॥

निराभिमानता—

दोहा

व्यक्ति व्यक्ति के माप में रखो सदा ईमान।
निज पर में निःपक्ष बन, करो विनय का ध्यान॥ ११३१

सब का ही सन्मान हो गुण सेवा अनुसार।
मधुर वचन बोलो सदा पालो शिष्टाचार॥ ११३२॥

अकड अकड कर मत रहो रखो विनय का ध्यान।
यदि दोगे सन्मान तो पाओगे सन्मान॥ ११३३॥

आत्म-प्रशंसा मत करो करो न पर-अपमान।
विनय धर्म छोडो नहीं करो न गौरव हान॥ ११३४॥

निज गौरव का ध्यान हो पर हो न्याय विचार।
निज गौरव के नाम पर करो न दुर्व्यवहार॥ ११३५॥

धन बल पद करने लगें यदि गुण का अपमान।
डट जाओ खम ठोककर, रख गौरव का ध्यान ११३६॥

मान और अपमान में रहे सत्य का ध्यान ।
जितना जिसका मूल्य हो उतना उसका मान ॥ ११३७ ॥
अहंकार को छोड़दो लेकिन बनो न दीन ।
देने में लेकर अधिक बनो न गौरवहीन ॥ ११३८ ॥
गौरव का रक्षण करो करो सदा उपकार ।
अपने पर बढ़ने न दो कणभर ऋण का भार ॥ ११३९ ॥
अगर लिया उपकार ऋण करदो प्रत्युपकार ।
सच्चे प्रत्युपकार से मानपान सत्कार ॥ ११४० ॥
करके प्रत्युपकार पर रखो विनय व्यवहार ।
विनय और गौरव सदा रखते हैं सहकार ॥ ११४१ ॥
आने दो न कृतघ्नता मानवता की सौत ।
न्याय विनय उपकार की है कृतघ्नता मौत ॥ ११४२ ॥
स्वार्थी बनकर मत करो परनिन्दा का ध्यान ।
गुण दुर्गुण की बात में रखो सदा ईमान ॥ ११४३ ॥
निरभिमान मन हो सदा उचित विनय व्यवहार ।
गौरव का भी ध्यान हो यह मानवता-सार ॥ ११४४ ॥

गीत—४५

अकड़ता क्यों रे अभिमानी ।
इस दुनिया में बड़ों बड़ों का उतर गया पानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११४५ ॥
जब जग का मन जीत न पाया ।
ऊंचा आसन वृथा बनाया ॥
हिलमिलकर रह सका न जगमें हुई परेशानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११४६ ॥
अपनी ही तारीफ न कर तू ।
बेशर्मी का राग न भर तू ॥

अपने मुँह से अपनी महिमा जग ने कब जानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११४७ ॥

घुस घुसकर क्यों आगे आता ।
क्यों धक्के पर धक्के खाता ॥
निजगौरव का ध्यान नहीं बस है खींचातानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११४८ ॥

छीन झपट कर लेता है पद ।
पद पाकर झरने लगता मद ॥
रे उन्मत्त न तूने सच्ची गुरुता पहिचानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११४९ ॥

एक घडी की है सब छाया ।
जग की सब क्षणभगुर माया ॥
सब को मिट्टीमें मिलना है भूल न अज्ञानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ॥ ११५० ॥

साधु गुणी जन का सेवक बन ।
शिष्टाचार विनय में रख मन ॥
जन जन के मन मन पर तेरी बने राजधानी ।
अकड़ता क्यों रे अभिमानी ११५१ ॥

निश्छलता—

दोहा

छल छद्मों को छोड दो करो न मायाचार ।
सरल शुद्ध जीवन बने बढे परस्पर प्यार ॥ ११५२ ॥
सारी छलना व्यर्थ है वाणी गोलमटोल ।
आज नहीं तो कल यहां खुलजाती है पोल ॥ ११५३ ॥
कुछ दिन में ही वंचना होती है बेकार ।
लदकर रहजाता सदा मनपर मनभर भार ११५४ ॥

अगर छिपाया पाप तो पापी की ही हान ।
अगर छिपाया रोग तो रोगी का नुकसान ॥ ११५५ ॥
जगको धोखा दो नहीं करो सरल व्यवहार ।
लेकिन विनय न छोडना रखना शिष्टचार ॥ ११५६ ॥
निश्छलता के नाम पर करो न दुर्व्यवहार ।
छोडो मत गम्भीरता रक्खो शिष्टाचार ॥ ११५७ ॥
उथलापन को दूर रख रहो वीर गम्भीर ।
पर जग को ठगना नहीं करना मन दिलगीर ॥ ११५८

गीत–४६

छोड़दे सारा मायाचार ।
पाप छिपाकर क्यों रखता है बनता है बीमार ।
छोडदे सारा मायाचार ॥ ११५९ ॥
सदा न छिपकर रह पाता छल ।
आज नहीं तो खुलजाता कल ॥
अविश्वास का लगजाता है घर घर में बाजार ।
छोडदे सारा मायाचार ॥ ११६० ॥
छलना की झूठी चतुराई ।
फटजाते हैं भाई भाई ॥
मुँह से भले न कुछ कहपायें पर मनमें बेजार ।
छोडदे सारा मायाचार ॥ ११६१ ॥
प्रेमी और सुखी तब प्राणी ।
जब है एक सुमन तन वाणी ।
निश्छलता से बने निराकुल सब जीवन व्यवहार ।
छोड़दे सारा मायाचार ॥ ११६२ ॥

अक्रोध—

क्रोध बड़ा भारी नशा पागलपन है क्रोध ।

क्रोधी पासकता नहीं कर्तव्यों का बोध ॥ ११६३ ॥
क्रोध निरंकुश जब हुआ भुला दिया तब भान।
भूल गये विद्वान भी हित अनहित पहिचान ॥ ११६४ ॥
क्रोधी मन पागल हुआ भूला शिष्टाचार।
वैर भाव मनमें बसा टूट गया व्यवहार ॥ ११६५ ॥
जब क्रोधी के क्रोध से लगी हृदय में आग।
पीछे यदि वह बुझ गई तोभी मिटा न दाग ॥ ११६६ ॥
क्रोध भयकर आग है दुसह दुखागार।
जलजाते हैं क्रोधसे घर पड़ौस संसार ॥ ११६७ ॥
क्रोध भयकर वेदना दुःसह इसकी पीर।
अंग अंग कपने लगे तड़पा सकल शरीर ॥ ११६८ ॥
हिंसा-ताडव क्रोध से क्रोध पुण्य का रोध।
दुख का कारण ही नहीं दुःखात्मक भी क्रोध ॥ ११६९ ॥
क्रोध न आपाता वहा जहा हृदय बलवान।
धीरज से होती जहा हित अनहित पहिचान ॥ ११७० ॥
समझ बूझकर काम लो समझो पर की भूल।
उतावली का क्रोध है निज को पर को शूल ॥ ११७१ ॥
क्रोध प्रगट करना कभी अगर हुआ अनिवार्य।
तो भी मर्यादा रहे बिगड़ न पाये कार्य ॥ ११७२ ॥
यदि अनुशासन के लिये दृढता हो अनिवार्य।
क्रोधहीन दृढता रखो बन जायेगा कार्य ॥ ११७३ ॥
क्रोध किट करना नहीं परम वैर की खान।
क्रोध कालिमा में रहे मर्यादा का भान ॥ ११७४ ॥
छोड़ो मत गम्भीरता करो हृदय बलवान।
अक्रोधी ही पासकें विजय कीर्ति सन्मान ॥ ११७५ ॥

करो अहिंसा साधना कर हिंसा का रोध।
अक्रोधी बलवान बन जीतो मन का क्रोध ॥ ११७६ ॥

गीत—४७

गुस्सा बडी बुरी बीमारी।
जब जब हुआ क्रोध का दौरा तब पागल नर नारी।
गुस्सा बडी बुरी बीमारी ॥ ११७७ ॥
विनय विवेक शून्य क्रोधी मन रहा न शिष्टाचारी।
लाज शरम की बातें मुँह से—निकलीं, टूटी यारी ॥
गुस्सा बडी बुरी बीमारी ॥ ११७८ ॥
ज्वालामुखी समान क्रोध यह विस्फोटक है भारी।
होता जब विस्फोट उजड़ती जीवन नगरी सारी ॥
गुस्सा बड़ी बुरी बीमारी ॥ ११७९ ॥
क्रोधानल की ज्वालाओं से जली सभ्यता सारी।
तड़प तड़प कर रहजाती है मानवता बेचारी ॥
गुस्सा बड़ी बुरी बीमारी ११८० ॥
रखो क्रोध पर अंकुश पूरा अघहारी सुखकारी।
धीरज न्याय विवेक शक्ति से बनो शांति अवतारी।
गुस्सा बड़ी बुरी बीमारी ॥ ११८१ ॥

दोहा

है यह मन की साधना रहे हृदय अकषाय।
प्रेम बहायें रात दिन सबके मन वच काय ॥ ११८२ ॥

जीवनसाधना—

यह जीवन की साधना बने जिन्दगी नेक।
निजहित परहित में मिले चमकें प्रेम विवेक ॥ ११८३ ॥
यह जीवन की साधना जहा न झूठी टेक।
हित अनहित का ज्ञान हो जाग्रत रहे विवेक ॥ ११८४ ॥

यह जीवन की साधना हो घर घर में मित्र ।
थोड़ी पूँजी से बने सुन्दर जीवन चित्र ॥ ११८५ ॥
यह सब से सुन्दर कला चमके जीवन चित्र ।
जीवन सुखद महान हो प्रेमी और पवित्र ॥ ११८६ ॥
यह जीवन की साधना कभी न मन अवसन्न ।
खुद भी सदा प्रसन्न हो जग को रखे प्रसन्न ११८७ ॥
जीवन-साधक शोक में कभी न फसने पाय ।
उसकी संगति प्राप्त कर रोता भी हँस जाय ॥ ११८८ ॥
यह जीवन की साधना जहां दूर दुख द्वंद ।
रहे अहिंसा भक्ति से घर घर में आनन्द ॥ ११८९ ॥

गीत—४८

जीवन साधक बनजा प्राणी जीवन में आजाये रंग ।
संयम धर्म मोक्ष सब चमकें अर्थ काम के संग ॥
जीवन साधक बनजा प्राणी . . . . ॥ ११९० ॥
सत्य अहिंसा-भक्ति सदा हो हो न न्यायका भंग ।
तेरे दुःस्वार्थों के कारण हो न दूसरा तंग ।
जीवन साधक बनजा प्राणी . . . . ॥ ११९१ ॥
रग रग में हो प्रेम उछलता हँसते सारे अंग ।
जीवन हो आनन्द कंद, पर-वश में रहे अनंग ।
जीवन साधक बनजा प्राणी . . . ॥ ११९२ ॥
थोड़ी पूँजी रहे मगर हो कलाकार का ढंग ।
ऐसा जीवन चित्र बनाले जग होजाये दंग ॥
जीवन साधक बनजा प्राणी . ॥ ११९३ ॥

लोक साधना—

दोहा

लोक साधना है यही न्यायी हो सब लोक ।

न्यायी जन की राह में रहे न चिन्ता शोक ॥११९४॥
स्वार्थों का ताडव मिटे नच न सके शैतान ।
न्याय-विनय सबमें रहे सबको सबका स्थान ॥११९५॥
न्याय और अन्याय सब रहें सदा फलवन्त ।
रहे व्यवस्था लोक में निर्भय हों सब सन्त ॥११९६
जगमें मानवता बसे पशुता हो न प्रचंड ।
पशुता अगर प्रचंड हो तो पाये वह दंड ॥११९७॥
जगमें मानवता बसे आ न सके शैतान ।
यदि आये शैतान तो भेजा जाय मसान ॥११९८॥
न्याय-विनय जगमें रहे आ न सके अन्याय ।
यदि आये अन्याय तो सफल न होने पाय ॥११९९॥
लोक साधना के लिये दो ऐसा सद्बोध ।
दुनिया में अन्याय का जो करदे पथरोध ॥१२००॥
सारे बोधोपाय जब होजाये बेकार ।
तब जगरक्षा के लिये करो उचित संहार ॥१२०१॥
करते रहो विवेक से पात्रापात्र-विचार ।
भिन्न भिन्न हो साधना अवसर के अनुसार ॥११०२॥
संयम और विवेक से हो जगहित का काम ।
प्रबोधिनी संहारिणी दोनों एक समान ॥ १२०३ ॥

बत्तीस मात्रिक

आदर्श दिखाओ, प्रेम करो, दो शिक्षण, आग्रह बतलाओ ।
वैफल्य दिखाओ, या कि उपेक्षा करके, जगको समझाओ ॥
जब तक हों सफल प्रबोधन ये संहार न तब तक दिखलाओ ।
निरुपाय बनो संहार करो, अन्याय न विजयी बनवाओ॥१२०४

आदर्शदर्शिनी लोकसाधना—

जीवन जब परम पवित्र बने तब घटमें मोक्ष समायेगा।
सन्तोष शान्ति सुख देखदेख दुनियाका मन ललचायेगा।
जग हाथ पसारे आयेगा सन्तोष शान्ति सुख पायेगा।
आदर्श दर्शिनी का साधक यह दुनिया नई बनायेगा ॥१२०५॥

प्रेमदर्शिनी लोकसाधना—

जो पापी को बीमार समझकर सच्चा प्रेम दिखायेगा।
मानवता का उद्बोधन कर पशुता को दूर भगायेगा।
जो पश्चात्ताप करायेगा पापी का दिल पिघलायेगा।
वह प्रेमदर्शिनी का साधक यह दुनिया नई बनायेगा ॥१२०६॥

शिक्षणी लोकसाधना—

जो तर्क और उपदेशों से जगहित की बात सिखायेगा।
परहिंसा में अपनी हिंसा का जग को पाठ पढ़ायेगा।
नरपशु के मनको मानवमनमें परिवर्तित कर जायेगा।
शिक्षणी साधना का साधक यह दुनिया नई बनायेगा॥१२०७॥

आग्रहिणी लोक साधना—

अन्यायी के पथमें मिटकर भी जो बाधा पहुँचायेगा।
अपनी सहिष्णुता के तप से मानव का मन पिघलायेगा।
बलिदानों से पापी के मन में लाज शरम भरजायेगा।
आग्रहिणी साधक शूरवीर यह दुनिया नई बनायेगा ॥१२०८॥

वैफल्यदर्शिनी लोकसाधना—

जो सफल हुए अन्यायों को निःसार सिद्ध कर जायेगा।
जिससे पापी मन की करके भी कुछ भी सार न पायेगा।
मनकी दृढता से अन्यायी को पश्चात्ताप करायेगा।

वैफल्य दर्शिनी का साधक यह दुनिया नई बनायेगा॥ १२०९॥

उपेक्षिणी लोक साधना—

जो महावीर अन्यायों पर समुपेक्षा पूर्ण दिखायेगा।
पापी के सारे पापों को जो भूखों ही मरवायेगा।
अनुपम दृढ़ता से पापी को बच्चे सा तुच्छ बनायेगा।
वह परम उपेक्षा का साधक यह दुनिया नई बनायेगा। १२१०॥

संहारिणी लोक साधना—

दुर्दान्त नीच शैतानों को जो गर्ज गर्ज दहलायेगा।
जो अन्यायी पर कर प्रहार दुनिया को न्याय दिलायेगा।
जो शिष्टानुग्रह दुष्ट दमनसे अवतारी बनजायेगा।
संहार साधना का साधक यह दुनिया नई बनायेगा ॥१२११॥

दोहा

करो अहिंसा-साधना हो घर घर आनन्द।
मूर्तिमान सद्धर्म हो मिले सच्चिदानन्द ॥ १२१२ ॥
अगर कहीं अनिवार्य हो दो हिंसा में एक।
अधिक विश्वहित दृष्टिसे रक्खो वहां विवेक ॥१२१३॥
स्वपरघात से हो अधिक जहां जगत का त्राण।
जगहित साधक घात वह बना धर्म का प्राण ॥१२१४॥
घात अनेक प्रकार हैं प्रकृति पुरुष अनुसार।
पर सब हिंसात्मक नहीं इसका रखो विचार ॥१२१५॥
साधक वर्धक घात या जिससे रक्षित न्याय।
परम अहिंसात्मक बना लेकर हिंसाकाय ॥ १२१६ ॥
सहज श्रमज भाग्यज हुआ अगर जीव का घात।
घातक का तब दोष क्या प्रकृति नियम की बात ॥१२१७॥

हैं आरम्भक घात के सब आवश्यक कार्य ।
इसीलिये क्षन्तव्य हैं जीवन को अनिवार्य ॥ १२१८ ॥
होता है क्षन्तव्य वह जो निजरक्षक घात ।
निजरक्षण अन्याय्य हो तो हिंसा की बात ॥ १२१६ ॥
हुआ प्रमादज घातमें मन यह लापर्वाह ।
है अविवेकज घात तो पूर्ण पाप की राह ॥ १२२० ॥
बाधक घात प्रचंड है हिंसक मायाचार ।
यहां न्याय का खून है निजपर दु खागार ॥ १२२१ ॥
तक्षक भक्षक घातमें पूरे अत्याचार ।
नंगी हिंसा है यहीं शैतानी ससार ॥ १२२२ ॥
घात घात हैं भिन्न सब हेयाहेय स्वरूप ।
कोई हिमगिरि के शिखर कोई दुखके कूप ॥१२२३॥
कोई तो अनिवार्य हैं प्रकृति नियम अनुसार ।
जिनमें अपना वश नहीं उनका कौन विचार ॥१२२४
करलो हृदय विवेकमय करलो घात अघात ।
हित अनहित अनुसार है सब अवसर की बात ॥१२२५॥
जगहितमय जो घात वह कहलाता सत्कर्म ।
जगहित सम्भव हो जहां वहीं अहिंसा धर्म ॥ १२२६ ॥
करलो घात शरीर के आत्मा की पहिचान् ।
मिले अहिंसा धर्म के तनमन का विज्ञान ॥ १२२७ ॥
लिया अहिंसा धर्म ने यदि हिंसा का वेष ।
तो उसको पहिचानलो दूर हटेंगे क्लेश ॥ १२२८
वेप नहीं आधार है जीवन है आधार ।
समझ अहिंसा धर्मको मनें-जनहित-अनुसार ॥ १२२९ ॥

साधकघात—

गीत—४९

धन्य है तेरा यह बलिदान ।
साधक घाती वीर तपस्वी जगको देता ज्ञान ।
धन्य है तेरा यह बलिदान ॥ १२३० ॥
जब मायाचारी हैं बच्चे ।
सत्य बोलने में हैं कच्चे ।
धर्म सिखाने को तू लेता खुद ही दंड महान ।
धन्य है तेरा यह बलिदान ॥ १२३१ ॥
तुझसे बजा न्याय का डंका ।
किन्तु रही पर के मन शंका ॥
तब तूने निज न्याय पक्ष को किया वहां कुर्बान ।
धन्य है तेरा यह बलिदान ॥ १२३२ ॥
यह जीवन बेकार हुआ जब ।
इस दुनिया पर भार हुआ जब ॥
शान्त चित्तसे इस शरीर का किया तभी अवसान ॥
धन्य है तेरा यह बलिदान ॥ १२३३ ॥
तेरा मनविज्ञान धन्य है ।
संयम त्याग विवेकजन्य है ॥
हिंसा गई अहिंसा का अब घर घर में गुणगान ।
धन्य है तेरा यह बलिदान ॥ १२३४ ॥

दोहा

दुख देना सुख के लिये है यह वर्धक घात ।
ताडन पीड़न हैं यहां पर सब सुख की बात ॥ १२३५ ॥
मातपिता ताड़ें अगर अपनी ही सन्तान ।
तो यह वर्धक घात है है सुधार का ध्यान ॥ १२३६ ॥

यहा द्वेष मनमें नहीं और न है अपमान ।
बस हितैषिता है भरी है विकास का ध्यान ॥ १२३७

अभी तनिकसा कष्ट है पीछे सुख-भंडार ।
तनमें रही कठोरता मनमें आया प्यार ॥ १२३८ ॥

हाथों से छैनी चली पर पिघले मनप्राण ।
वर्धकघाती ने किया देवमूर्ति-निर्माण ॥ १२३९ ॥

गीत—५० .

ओ वर्धकघाती मूर्त्तिकार ।
है प्रेमपूर्ण यह मन तेरा फिर भी ये छैनी के प्रहार ॥
ओ वर्धक घाती मूर्तिकार ॥ १२४० ॥

यद्यपि तूने पत्थर तोड़ा ।
पर पत्थर से जीवन जोडा ॥
यह भद्दा सा पत्थर तेरा बन सका दिव्यता का आगार ।
ओ वर्धक घाती मूर्त्तिकार ॥ १ ४१ ॥

दिखता है तू कितना निर्दय ।
कैसी कठोरता का अभिनय ।
पर निर्दय अभिनय के तनमें कोमलता तेरी है अपार ।
ओ वर्धक घाती मूर्त्तिकार ॥ १२४२ ॥

दुर्गम्य बनाया अन्तस्तल ।
मानों तू है जिन्दा श्रीफल ॥
बाहर रूखा भीतर लेकिन भररहा गिरी में स्नेह प्यार ।
ओ वर्धक घाती मूर्त्तिकार ॥ १२४३ ॥

यद्यपि तू करता है प्रहार ।
निर्माण मगर तेरी पुकार ।
इस ठुक ठुक के अन्तर में झकार रहे हैं तार तार ।
ओ वर्धकघाती मूर्त्तिकार ॥ १२४४ ॥

न्यायरक्षक घात—

हरिगीतिका

स्वार्थी दुराचारी जगत्पीड़क बना भूभार हो।
भूभार हरने के लिये तब दुष्ट का संहार हो॥
अन्याय का हो नाश जगमें न्याय का जयकार हो।
इस न्याय रक्षक घात से संसार का उद्धार हो॥१२४५॥

अन्यायियों के नाशमें न्यायी जनों के त्राण में।
रहता अहिंसा धर्म है यों विश्व के कल्याण में॥
इस विश्व के कल्याण में मन दक्ष होना चाहिये।
पर दक्ष होने के लिये निष्पक्ष होना चाहिये॥ १२४६॥

हो शत्रु भी न्यायी अगर तो पात्र है वह प्यार का।
हो पुत्र भी पापी अगर तो पात्र है संहार का॥
है न्याय की रक्षा जहां अन्याय का अपमान है।
रहता जहां ईमान है रहता वहीं भगवान है॥ १२४७॥

अन्याय को विजयी कभी बनने न देना चाहिये।
सब को सदा भूभार हर कर पुण्य लेना चाहिये॥
हो न्याय का रक्षण सदा अन्याय विजयी हो नहीं।
शैतान या शैतानियत जग में न रह पाये कहीं॥१२४८॥

गीत—५१

जगमें रह न सके अन्याय।
नाते का सम्बन्ध छोड़कर।
न्याय धर्म से प्रेम जोड़कर।
प्राणों की ममता मरोड़ कर।
बन तू न्याय-सहाय।
जगमें रह न सके अन्याय॥ १२४९॥

जिसपर गिरी पाप की छाया ।
जिसने जग का दु:ख बढ़ाया ।
अपना हो या रहे पराया ।
कर उसका सदुपाय ।
जगमें रह न सके अन्याय ॥ १२५० ॥

पाप न जगमें राज्य जमाये ।
अबलाओं की लाज न जाये ॥
निरपराध निर्भयता पाये ।
धर्मराज्य आजाय ।
जग में रह न सके अन्याय ॥ १२५१ ॥

सहज घात—

दोहा

कण कण में कीटाणु हैं भरी हुई है फौज ।
पल पल में होता मरण यह कुदरत की मौज ॥१२५२॥
स्वास स्वास में मर रहे प्राणी लाख हजार ।
मानव का कुछ वश नहीं सहज प्रकृति की मार ॥१२५३॥
नाममात्र चैतन्य हैं जो इस जगमें जीव ।
उनका जीवन या मरण है न धर्म की नींव ॥१२५४॥
सहजघात के नाम से मत सिकोड़ना नाक ।
कभी अहिंसा धर्म का करना नहीं मजाक ॥ १२५५ ॥
जीवन भी रक्षित रहे धर्म रहे व्यवहार्य ।
उतना ही पालन करो यही अहिंसा कार्य ॥ १२५६ ॥
सहजघात से है नहीं नष्ट अहिंसा धर्म ।
है शक्यानुष्ठान ही धर्म कर्म का मर्म ॥ १२५७ ॥

भाग्यज घात—

घातक की इच्छा नहीं मन तनमें न प्रमाद ।
पर आकस्मिक रीति से हो कोई बर्बाद ॥ १२५८ ॥

मरने वाला मूल से पहुँचे यम के द्वार ।
तो यह भाग्यज घात है आकस्मिक संहार ॥ १२५९ ॥
भाग्यघात हिंसा नहीं कहला सके न पाप ।
इस पर धर्माधर्म की नहीं लगाना छाप ॥ १२६० ॥

भ्रमज घात—

घातक की इच्छा न थी आया सहज प्रमाद ।
भ्रमसे कुछ का कुछ हुआ प्राण हुए बर्बाद ॥ १२६१ ॥
भ्रमज घात से हृदय में होता पश्चात्ताप ।
होता प्रायश्चित्त भी यद्यपि है निष्पाप ॥ १२६२ ॥
हिंसा इसे न कह सकें यद्यपि है कुछ भूल ।
क्योंकि बनी है भूल वह घातक के मन शूल ॥ १२६३ ॥

आरम्भज घात—

है न घात की भावना है न घात की बात ।
घात हुआ निर्वाह में है आरम्भज, घात ॥ १२६४ ॥
यत्न साधना हो सदा फिर भी जो अनिवार्य ।
है आरम्भज घात वह अर्थ काम का कार्य ॥ १२६५ ॥

हरिगीतिका

गृह कार्य में उद्योग में निर्वाह का आधार है ।
वह घात आरम्भज यथा-सम्भव न हिंसागार है ॥
कृषिकार्य में इस घात में गुण से बहुत कम दोष है ।
रुकता इसीसे मांस-भक्षण यह बड़ा सन्तोष है ॥ १२६६ ॥
अनिवार्य जो आरम्भ हो उसको समझ मत पाप तू ।
वह दूसरा करदे कि करले कार्य अपनेआप तू ॥
करना, कराना, मानना, चखना सुफल, सब एक है ।
आरम्भ को फिर कोसना छल का बड़ा अतिरेक है ॥ १२६७ ॥

उद्योग सारे एक ही जन है न कर सकता कभी ।
जिससे बने जो और जितना वह करें मिलकर सभी ॥
कोई लगे उपदेश में कोई लगे उद्योग में ।
है लोकहित का ध्यान तो आरम्भ है सब योग में ॥१२६८॥
आरम्भ का है त्याग अपरिग्रह बताने के लिये ।
मितभोगता है विश्व की सेवा बजाने के लिये ॥
आरम्भ या उद्योग छोड़ा यह अहिंसा है नहीं ।
होता जहां उपयोग है तज्जन्य हिंसा भी वहीं ॥१२६९॥
आरम्भ-घातकता हुई अनिवार्य जीवन के लिये ।
इससे न हिंसा रूप है यह प्राण है इसने दिये ॥
आरम्भ यदि ये बन्द हों तो जन-जगत मरजायगा ।
तब धर्म अव्यवहार्य होगा पाप ही भर जायगा ॥१२७०॥
स्वरक्षक घात—

दोहा

अपना रक्षण हो जहां जन्मसिद्ध अधिकार ।
वहां स्वरक्षक घात है बाधक का संहार ॥ १२७१ ॥
बाधा के पहिले अगर हुई घात की बात ।
यह सतर्कता कार्य भी हुआ स्वरक्षक घात ॥ १२७२ ॥
कृमि पतंग विषजन्तु जो तंग करें दिनरात ।
उन सब का संहार भी है निजरक्षक घात ॥ १२७३ ॥
हिंस्र जन्तु रक्षा करें जब तब राह कुराह ।
उनके घात अघात की मत करना पर्वाह ॥ १२७४ ॥
है निजरक्षक घात यह पुण्य नहीं या पाप ।
आवश्यक कर्तव्य यह होता अपनेआप ॥ १२७५ ॥
यदि निजरक्षक घातमें मुख्य बना हो न्याय ।

तक्षक घात—

जगहित के प्रतिकूल हो क्रोधमान उद्दंड।
हुआ जगत का घात वह तक्षक घात प्रचंड ॥ १२९५ ॥
अपने स्वार्थों के लिये निरपराध संहार।
सुखवर्धन का शत्रु वह तक्षक नरकागार ॥ १२९६ ॥
बाहर भीतर सब तरह होता हिंसाकांड।
तक्षक घातों से सदा तड़पा है ब्रह्मांड ॥ १२९७ ॥
बनता तक्षक घात में अहंकार शैतान।
अहंकार यमराज बन करता जगत मसान ॥ १२९८ ॥
बल का जहां घमंड है है लड़ने की बात।
न्याय-विनय बिलकुल नहीं है वह तक्षक घात।१२९९

भक्षक घात—

सुखवर्धन-प्रतिकूल जो परप्राणी का भोग।
होता भक्षक घात वह तीव्र स्वार्थ का रोग ॥ १३०० ॥
जहां अन्न मिलता वहां मांसाशन की बात।
सुखवर्धन-प्रतिकूल वह होता भक्षक घात ॥ १३०१ ॥
हो दुःस्वार्थों के लिये मारपीट संहार।
होता भक्षक घातका यह भी एक प्रकार ॥ १३०२ ॥
भक्षक घात असंख्य हैं सब के भीतर मोह।
मोह हुआ उद्दंड जब उमड़ पड़ा तब द्रोह ॥ १३०३ ॥
स्वार्थी स्वार्थों के लिये करते हैं संहार।
होता भक्षक घात से हिंसामय संसार ॥ १३०४ ॥
भिन्न भिन्न आत्मा लिये हैं ये तेरह घात।
सभी न हिंसात्मक बने सब की अपनी बात ॥ १३०५ ॥

गीत-५२

सारे घात न एक समान ।
मनोवृत्ति, फल कुफल शक्यता इन पर रक्खो ध्यान ।
सारे घात न एक समान ॥ १२०६ ॥

कोई घात पाप कहलाते ।
कोई घात पुण्य बनजाते ॥
कोई पुण्य पाप के बाहर निश्चल प्रकृति विधान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०७ ॥

पापात्मक से नाता तोड़ो ।
पुण्यात्मक से नाता जोड़ो ॥
एकान्ती मन बनो विवेकी बनकर करो निदान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०८ ॥

जिससे हो जगमें सुख वर्धन ।
उसी कार्य में लगने दो मन ।
हिंसा और अहिंसा का है यही सत्य व्याख्यान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०९ ॥

अघात—

दोहा

भिन्न भिन्न आत्मा लिये जैसे तेरह घात ।
भिन्न भिन्न आत्मा लिये त्यों अघात भी सात १३१० ॥
प्रेम मोह या स्वार्थ हो अनुपयोग अविवेक ।
हो अशक्ति या हो कपट इनमें सच्चा एक ॥ १३११ ॥

प्रेमज अघात—

विश्वप्रेम का भाव हो स्वार्थ रहे न प्रधान ।
तब अघात प्रेमज हुआ जब जग बन्धु समान ॥ १३१२॥
वीतरागता है, यही यही श्रेष्ठ सत्कर्म ।

तो निजरक्षक घात भी पुण्य रूप बनजाय ॥ १२७६ ॥
यदि हमको पीडित करें गुंडे डाकू चोर ।
तो उनका संहार भी है सुनीति की ओर ॥ १२७७ ॥
शासक बनकर जो करें हम पर अत्याचार ।
तो उनका संहार भी न्याय-रक्षकाचार ॥ १२७८ ॥
रहे न्याय की मुख्यता मर्यादा का ज्ञान ।
तो निजरक्षक घात भी समझो न्यायविधान ॥ १२७९ ॥

प्रमादज घात—

लापर्वाही से दिया अगर किसी को कष्ट ।
हुआ प्रमादज घात यह हुई सभ्यता नष्ट ॥ १२८० ॥
खिड़की से फेंका अगर कचरा दिन या रात ।
योग्य निरीक्षणके बिना हुआ प्रमादज घात ॥ १२८१

गीत—५२

मत बन लापर्वाह। आदमी मत बन लापर्वाह ।
देख भालकर कर सब धंधा ।
आंख मिली फिर भी क्यों अंधा ॥
लापर्वाही से क्यों करता है गंदी सब की राह ।
आदमी मत बन लापर्वाह ॥ १२८२ ॥
कचरा पड़ा किसी के ऊपर ।
गाली से गूंजा तेरा घर ॥
क्यों गाली खरीदने की है तेरे मनमें चाह ।
आदमी मत बन लापर्वाह ॥ १२८३ ॥
इधर उधर तू थूक उड़ाता ।
गंदी सारी जगह बनाता ॥
कहने पर गुस्सा आता है होता अन्तर्दाह ।
आदमी मत बन लापर्वाह ॥ १२८४ ॥

यह असभ्यता पशुता लाती।
मत बन कभी प्रमादज-घाती ।
सम्हल सम्हल कर चल फिर भाई निशदिन बारह माह।
आदमी मत बन लापर्वाह ॥ १२८५ ॥

अविवेकज घात—

रही अन्धश्रद्धा जहां रहा जहां अविवेक ।
आये आविवेकज वहां हिंसक घात अनेक ॥ १२८६ ॥
घर घर में पैदा हुए मन के काल्पित भूत ।
मारपीट होने लगी मिले नरक के दूत ॥ १२८७ ॥
योग्य चिकित्सा रुकगई रोगी हुए शिकार ।
विना मौतकी मौत की मची यहां भरमार ॥ १२८८ ॥
अविवेकज घाती जगत करता जो बलिदान ।
उससे स्वर्ग समान जग बनता नरक समान ॥ १२८९ ॥
मानवता-घातक हुआ यह अविवेकज घात ।
'मानवता न विवेक बिन' लाख बात की बात ॥ १२९० ॥

बाधक घात—

न्याय दबाने के लिये करना निजसंहार ।
बाधक घात प्रचंड यह हिंसक मायाचार ॥ १२९१ ॥
की चोरी, खुल भी गई, पर न कहायें चोर ।
इसीलिये सिर पीटकर खूब मचाया शोर ॥ १२९२ ॥
अपराधी गर्जन करें न्याय पक्ष दबजाय ।
जब जब बाधक घात हो तब तब तड़पे न्याय ॥ १२९३ ॥
सत्याग्रह के नाम पर हुआ दुराग्रहलीन ।
तब बाधक घाती हुआ जीवन पापाधीन ॥ १२९४ ॥

तक्षक घात—

जगहित के प्रतिकूल हों क्रोधमान उद्दण्ड ।
हुआ जगत का घात वह तक्षक घात प्रचंड ॥ १२९५ ॥
अपने स्वार्थों के लिये निरपराध संहार ।
सुखवर्धन का शत्रु वह तक्षक नरकागार ॥ १२९६ ॥
बाहर भीतर सब तरह होता हिंसाकांड ।
तक्षक घातों से सदा तड़पा है ब्रह्मांड ॥ १२९७ ॥
बनता तक्षक घात में अहंकार शैतान ।
अहंकार यमराज बन करता जगत मसान ॥ १२९८ ॥
बल का जहां घमंड है है लड़ने की बात ।
न्याय-विनय बिलकुल नहीं है वह तक्षक घात ।१२९९

भक्षक घात—

सुखवर्धन-प्रतिकूल जो परप्राणी का भोग ।
होता भक्षक घात वह तीव्र स्वार्थ का रोग ॥ १३०० ॥
जहां अन्न मिलता वहां मांसाशन की बात ।
सुखवर्धन-प्रतिकूल वह होता भक्षक घात ॥ १३०१ ॥
हो दुःस्वार्थों के लिये मारपीट संहार ।
होता भक्षक घातका यह भी एक प्रकार ॥ १३०२ ॥
भक्षक घात असंख्य हैं सब के भीतर मोह ।
मोह हुआ उद्दंड जब उमड़ पड़ा तब द्रोह ॥ १३०३ ॥
स्वार्थी स्वार्थों के लिये करते हैं संहार ।
होता भक्षक घात से हिंसामय संसार ॥ १३०४ ॥
भिन्न भिन्न आत्मा लिये हैं ये तेरह घात ।
सभी न हिंसात्मक बने सब की अपनी बात ॥ १३०५ ॥

गीत–५२

सारे घात न एक समान ।
मनोवृत्ति, फल कुफल शक्यता इन पर रक्खो ध्यान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०६ ॥
कोई घात पाप कहलाते ।
कोई घात पुण्य बनजाते ॥
कोई पुण्य पाप के बाहर निश्चल प्रकृति विधान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०७ ॥
पापात्मक से नाता तोड़ो ।
पुण्यात्मक से नाता जोड़ो ॥
एकान्ती मन बनो विवेकी बनकर करो निदान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०८ ॥
जिससे हो जगमें सुख वर्धन ।
उसी कार्य में लगने दो मन ।
हिंसा और अहिंसा का है यही सत्य व्याख्यान ।
सारे घात न एक समान ॥ १३०९ ॥

अघात–

दोहा

भिन्न भिन्न आत्मा लिये जैसे तेरह घात ।
भिन्न भिन्न आत्मा लिये त्यों अघात भी सात १३१० ॥
प्रेम मोह या स्वार्थ हो अनुपयोग अविवेक ।
हो अशक्ति या हो कपट इनमें सच्चा एक ॥ १३११ ॥

प्रेमज अघात–

विश्वप्रेम का भाव हो स्वार्थ रहे न प्रधान ।
तब अघात प्रेमज हुआ जब जग बन्धु समान ॥ १३१२॥
वीतरागता है यही यही श्रेष्ठ सत्कर्म ।

सच्चा यहीं अघात है यही अहिंसा धर्म ॥ १३१३ ॥

मोहज घात—

कुल कुटुम्ब के मोह से जो भी हुआ अघात ।
पुण्यपाप-निरपेक्ष वह है न धर्म की बात ॥ १३१४ ॥

स्वार्थज अघात—

जब तक अपना स्वार्थ हो तब तक रहे अघात ।
है न अहिंसा रूप वह है मतलब की बात ॥ १३१५ ॥

अनुपयोग अघात—

घात का न उपयोग जब तब जो हुआ अघात ।
पुण्यपाप निरपेक्ष वह है अघात की वात ॥ १३१६ ॥

अविवेकज अघात—

अविवेकी ने जब किया थोडा बहुत अघात ।
उससे दूना चौगुना घात हुआ दिनरात ॥ १३१७ ॥
कीटों की रक्षा हुई पर मानव का घात ।
कहने भर को रहगई बस अघात की बात ॥ १३१८ ॥
कितना घात अघात है इसका तनिक न ज्ञान ।
करते स्वल्प अघातसे बहुत घात नादान ॥ १३१९ ॥

अशक्तिक अघात—

शक्ति नहीं हो घात की इससे रहे अघात ।
यह न अहिंसा बनसके बस अघात की बात ॥ १३२० ॥

कापटिक अघात—

जहां घात की साधना पर अघात की बात ।
छलमय हिंसात्मक तथा है कापटिक अघात ॥ १३२१ ॥
भिन्न भिन्न आत्मा लिये हैं अघात ये सात ।
किन्तु अहिंसाधर्ममय प्रेमज एक अघात ॥ १३२२ ॥

निज पर घात अघात से है न अहिंसा धर्म ।
परम अहिंसा धर्म है सुख वर्धक-सत्कर्म ॥ १३२३ ॥
जगहित पर ही दृष्टि हो हो फल अफल विवेक ।
है न अहिंसा धर्म यदि है अघात की टेक ॥१३२४॥
पूर्ण अहिंसा धर्म है जगहित के अनुसार ।
जगहित ही आचार है जगहित ही व्यवहार ॥ १३२५ ॥
जगहित जहा अघातमय वहीं स्वर्ग या मुक्ति ।
'सोना और सुगंध' की वहीं पूर्ण है उक्ति ॥ १३२६ ॥
बढ़ो मुक्ति की ओर सब रखो अहिंसाचार ।
पर क्षणभर भूलो नहीं वस्तुस्थिति संसार ॥ १३२७ ॥

गीत–५४

अहिंसा का हो जयजयकार ।
हवानी शैतानी छूटें हो मानव अवतार ।
आहिंसा का हो जय जयकार ॥ १३२८ ॥
मनजीवन की रहे साधना रहे विशुद्ध विचार ।
सच्ची लोकसाधनामय हो जीवन का व्यवहार ॥
आहिंसा का हो जय जयकार ॥ १३२९ ॥
हो न अहिंसा अकर्मण्यता हो विधिमय आचार ।
मन मन हो तन तन में हो वचन वचन में प्यार ॥
आहिंसा का हो जय जयकार ॥ १३३० ॥
हो समाज की पूर्ण चिकित्सा पापों का संहार ।
मानव मानव बने कुटुम्बी बने एक संसार ॥
आहिंसा का हो जय जयकार ॥ १३३१ ॥

—❀—

सातवां अध्याय

सत्य

सत्यवचन बोलो सदा छोड़ो कपट कलाप।
कभी पनप सकता नहीं सच्चे के मन पाप ॥ १३३२ ॥

वहीं प्रेमविश्वास है जहां सत्य व्यवहार।
खड़ा प्रेम विश्वास पर यह सारा संसार ॥ १३३३ ॥

जहां प्रेम विश्वास है वहां न मायाचार।
आया मायाचार जब निकल गया तब प्यार ॥ १३३४ ॥

करे न जग की वंचना छूटेगा सहयोग।
तुम जगको वंचक बने तुमको वंचक लोग ॥ १३३५ ॥

वंचक वंचक सब मिलें किसको समझें कौन।
इससे तो अच्छा यही रहो रातदिन मौन ॥ १३३६ ॥

जब न बोलने का असर तब उसका क्या अर्थ।
सुनकर भी सुनता न जग गाल बजाना व्यर्थ ॥ १३३७ ॥

आयेंगे किस काममें झूठ तुम्हारे बोल।
स्वर चेष्टा मुँह आदि जब खोल रहे हैं पोल ॥ १३३८ ॥

कृति भाषा मन से बनी जो देती विश्वास।
कृतिभाषा होती नहीं वंचक जन के पास ॥ १३३९ ॥

कब तक देंगे काम ये झूठ तुम्हारे बोल।
आज नहीं तो कल यहां खुल जायेगी पोल ॥ १३४० ॥

झूठ को मिलते सदा घृणा और अपमान।
उसकी सच्ची बात भी होती झूठ समान ॥ १३४१ ॥

एक झूठ सौ झूठ को करती है उत्पन्न।
लदा झूठ के बोझसे मन क्या रहे प्रसन्न ॥ १३४२ ॥

जब तक मनमें झूठ है तब तक चिन्ताभार ।
जब तक मल है पेट में तब तक जन बीमार ॥१३४३॥
झूठ बोलना छोड़दो मल होजाये दूर ।
मिले प्रेम विश्वास सब मिले शक्ति भरपूर ॥ १३४० ॥
सत्य बोलना है सरल मनपर तनिक न भार ।
झूठ बोलना है कठिन मन पर बोझ अपार ॥ १३४५ ॥
झूठ बोलना दुःखमय फलमें भी निःसार ।
करते कायर मूर्ख ही यह भद्दी बेगार ॥ १३४६ ॥
विश्व कुटुम्बी बन करो झूठ वचन का त्याग ।
जन जनमें सहयोग हो मन मनमें अनुराग ॥ १३४७ ॥
निर्दयता का कार्य है कहना झूठी बात ।
झूठ वचन हिंसक बने करते मन का घात ॥ १३४८ ॥

गीत

मनका घात न कर नादान ।
कर मत तू वचना किसी की रख जगहित पर ध्यान ।
मनका घात न कर नादान ॥ १३४९ ॥
झूठ बोलकर पाप छिपाता ।
तू दुनिया को ठगने जाता ॥
पर तू ही ठग जाता है खुद लाभ बने नुकसान ।
मनका घात न कर नादान ॥ १३५० ॥
दे न किसी को झूठी आशा ।
आशा देकर दे न निराशा ॥
वचनों की कीमत खोकर तू मत कर गौरवहान ।
मनका घात न कर नादान ॥ १३५१ ॥
कोमल जिह्वा कर न कृपाणी ।
बोल सभी से मीठी वाणी ॥

तेरे स्वर स्वर में लहराये सत्येश्वर का गान।
मनका घात न कर नादान ॥ १३५२ ॥

दोहा

रखो नियन्त्रण वचन पर है यह शास्त्र महान।
न्याय्य वचन बोलो सदा सदा रख जनहित पर ध्यान ॥ १३५३॥
सत्य तथ्य के भेद का करलो ठीक विचार।
सत्य वचन बोलो सदा जगहित के अनुसार ॥ १३५४ ॥
सत्य परम कल्याणमय धर्मरूप सुख खान।
हित अनहित निरपेक्ष है तथ्य वस्तु विज्ञान ॥ १३५५ ॥
अगर सत्य पाया नहीं हुआ तथ्य बेकार।
सत्य प्राप्ति यदि होगई तो अतथ्य भी सार ॥ १३५६ ॥
सब से अच्छी बात यह सत्य तथ्य मिलजाँय।
सुन्दर और सुगंधमय सुमन सुमन खिलजाँय ॥ १३५७॥
सत्य तथ्य मिलकर जहां उभय सत्य बनजाय।
जगहितमय सत्पथ वहां निःसंशय दिखलाय ॥ १३५८ ॥

उभयसत्य—
अभिधा सच्ची हो जहां रहे व्यञ्जना धर्म।
उभय सत्य उत्तम वचन दिखलाता सत्कर्म ॥ १३५९ ॥

बहुसत्य—
साफ जहां हो लक्षणा रहे व्यञ्जना ठीक।
वचन हुआ बहुसत्य वह सुन्दर सत्य प्रतीक ॥ १३६० ॥

वस्तुसत्य—
वस्तुसत्य में वस्तु का है ज्यों का त्यों भान।
हित अनहित निरपेक्ष है यहां वस्तु विज्ञान ॥ १३६१ ॥

उपमान सत्य—
जहां सत्य हो व्यञ्जना सम्भव हो उपमान।

वहा सत्य उपमान वह सरल मनोहर ज्ञान ॥ १३६२ ॥

उपमानक सत्य—

कथा अविश्वासनीय हो किन्तु सत्य का ध्यान ।
है उपमानक सत्य वह हँसी खुशी का ज्ञान ॥ १३६३ ॥

फलसत्य—

हो अतथ्यमय वचन पर रहे विश्वहित ध्येय ।
कहलाता फल सत्य वह फल से ही अनुमेय ॥ १३६४ ॥

वस्तु असत्य—

बात जहा झूठी हुई धर्माधर्म विहीन ।
वस्तु असत्य वहा हुआ मना अज्ञानाधीन ॥ १३६५ ॥

पाप सत्य—

बात तथ्य से पूर्ण है पर फल में है पाप ।
पाप सत्य से जगत यह खुद को ठगता आप ॥ १३६६ ॥

उभय असत्य—

अभिधा भी झूठी जहा और व्यञ्जना पाप ।
उभय असत्य वचन हुआ जीवन दाहक ताप ॥ १३६७ ॥

उभय सत्य बहुसत्य या वस्तु सत्य उपमान ।
चार सत्य बोलो सदा रखो सत्य का ध्यान ॥ १३६८ ॥

उपमानक फलसत्य हैं वचन शक्ति के रोग ।
अतिसंकट में ही करो इनका कभी प्रयोग ॥ १३६९ ॥

वस्तु असत्य अबोधमय पापसत्य है पाप ।
उभय असत्य जहा, वहा—महापापका ताप ॥ १३७० ॥

तथ्य अतथ्य प्रयोग में रखो सत्य पर दृष्टि ।
न्याय और जनहित जहा वहीं सत्य की सृष्टि ॥ १३७१ ॥

शुद्ध तथ्य बोलो सदा रख विवेक सब लोग ।

आवश्यकता देखकर शोधक वचन प्रयोग ॥१३७२॥
हुआ प्रमादज तथ्यसे निज पर का नुकसान।
मन में पाप भले न हो पर फल पाप समान ॥१३७३॥
गाहस्थिक निंदक तथा पापोत्तेजक तथ्य।
हैं असत्य हिंसक वचन सब के लिये अपथ्य ॥१३७४॥
तथ्य जहां पर हेय है पाप रूप दुख खान।
वहां मौन धारण करो रख जगहित पर ध्यान ॥१३७५॥
अतथ्य से बचते रहो रख सुतथ्यपर ध्यान।
है अतथ्य में लाभ कम और बड़ा नुकसान ॥१३७६॥
अगर कभी अपवाद सम कहना पड़े अतथ्य।
साधक वर्धक न्याय का रक्षक ही है पथ्य ॥१३७७॥
भाग्यज भ्रमज अतथ्य में यद्यपि मन निर्दोष।
फिर भी चौकन्ने रहो हो सब को सन्तोष ॥१३७८॥
हो अतथ्य आरम्भमें पर न रहे अन्याय।
अपना उचित रहस्य बस नग्न न होने पाय ॥१३७९॥
यदि निज रक्षण न्याय्य है दुष्ट दूसरे लोग।
उनसे रक्षण के लिये क्षम्य अतथ्य प्रयोग ॥१३८०॥
करना नहीं प्रमाद से व्यर्थ अतथ्य प्रयोग।
आखिर इससे फैलता अविश्वास का रोग ॥१३८१॥
करो नहीं अविवेक से अतथ्य का व्यवहार।
पड़ा अंध विश्वास में डूब रहा संसार ॥१३८२॥
बाधकरूप अतथ्य में भरा दम्भमय पाप।
पाप ताप में बढ़गया छलने का भी ताप ॥१३८३॥
तक्षक या भक्षक रहें जो अतथ्य के रूप।
हैं वे उभय असत्य के नग्नरूप दुख कूप ॥१३८४॥

सत्यासत्य विवेक रख बोलो तथ्य अतथ्य ।
सत्य वचन बोलो सदा जो शिव सुन्दर पथ्य ॥१३८५॥
केवल वचनों से नहीं करो सत्य व्यवहार ।
स्वर चेष्टा मुख और कृति सच्चे भाषाद्वार ॥ १३८६ ॥
उत्तरोत्तर हैं प्रबल इसका रक्खो ध्यान ।
भाषा के अनुसार ही बनो सदा कृतिमान ॥ १३८७ ॥
सत्य तथ्य में मेल हो रक्खो इसका ध्यान ।
यदि है सत्य अतथ्यमय तो बीमार समान ॥ १३८८ ॥
अतथ्य वचनों से सदा घटता है विश्वास ।
यथाशक्ति आने न दो अतथ्य अपने पास ॥ १३९९ ॥
जहा सत्य के संगमें हो अतथ्य अनिवार्य ।
समझो आपद्धर्म सम वह संकट का कार्य ॥१३९० ॥
संकट टलते ही करो मनमें पश्चात्ताप ।
शुद्ध तथ्य कल्याणमय बोलो अपने आप ॥ १३९१ ॥
पाचों भाषाद्वार से निकले सत्यप्रकाश ।
होजाये व्यवहार में अविश्वास का नाश ॥ १३९२ ॥
सत्य बचन रहते जहा वह न पनपे पाप ।
सूर्योदय पर भागते चोर आप ही आप ॥ १३९३ ॥
जहा सत्य व्यवहार है वहीं प्रेम विश्वास ।
जहा प्रेम विश्वास है सुख का वहीं निवास ॥ १३९४ ॥
सत्य बोलने पर टिका यह सारा व्यवहार ।
इसीलिये हम कह चुके जग है सत्याधार ॥ १३९५ ॥

गीत—५६

सारा जग है सत्याधार ।
इस पर टिका सकल व्यवहार ॥ १३९६ ॥

सच्चे का विश्वास है सच्चे का सन्मान ।
सच्चे मन में होगया पापों का अवसान ॥
मन मन में तब उमडा प्यार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १३९७ ॥

जो न बात का है धनी वह पूरा कंगाल ।
व्यर्थ बजाता गाल वह बेगारी बेताल ॥
जगह जगह पाता धिक्कार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १३९८ ॥

झूठ समझाते हैं सभी भले न बोलें बोल ।
मुँह में चुप्पी हो मगर मन में बजते ढोल ॥
झूठ बोलना है बेकार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १३९९ ॥

वचनों के अनुसार जब दिख न सकेगा काम ।
सभी तुम्हे कर जायँगे ब्याज सहित बदनाम ॥
टूटेगा सारा सहकार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १४०० ॥

तुम जग को ठगने चले झूठा चमड़ा ओड ।
जग चौकन्ना होगया हुई झूठ की होड ॥
करें पाप की सब बेगार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १४०१ ॥

इज्जत मिट्टी में मिली टूट गया विश्वास ।
झूठों के मारे हुआ यह जग नरक निवास ॥
पद पद काटे बिच्छे अपार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १४०२ ॥

सत्यवचन बोलो सदा बढ़े खूब विश्वास ।
मन में पाप न रह सके दुःख न आये पास ॥
तब मन मन में छलके प्यार ।
सारा जग है सत्याधार ॥ १४०३ ॥

मन मन में विश्वास हो तन तन मे सहयोग।
एक कुटुम्बी जग बने करे सुखों का भोग।
सुखी बने सारा संसार।
सारा जग है 'सत्याधार ॥ १४०४ ॥



आठवां अध्याय

ईमान या अचौर्य

गीत–५७

सच्चा धन ईमान। आदमी, सच्चा धन ईमान।
जिसमें है ईमान वही जन सच्चा गौरववान॥
आदमी, सच्चा धन ईमान॥ १४०५॥

चोरी में क्या हुई कमाई।
जीवनभर की शान्ति गमाई॥
पाने से अधिकाधिक खोया लाभ बना नुकसान।
आदमी, सच्चा धन ईमान॥ १४०६॥

एक चोर चोरी करता है।
घर घर में चिन्ता भरता है॥
खुद भी गौरव शान्ति गमाता कैसा वह नादान।
आदमी, सच्चा धन ईमान॥ १४०७॥

चोरी से जो धन आता है।
इधर उधर से बह जाता है।
नंगा का नंगा रहता है बनता है हैवान।
आदमी, सच्चा धन ईमान॥ १४०८॥

कर तू इज्जत की रखवाली।
ले अचौर्य, बन गौरवशाली॥
श्रम गौरव विश्वास प्रेम से बन सच्चा धनवान॥
आदमी, सच्चा धन ईमान॥ ४०९॥

दोहा

जो न करे चोरी ठगी जिसके मन ईमान।
सारा जग उसके लिये बनता बन्धु-समान १४१०॥
पाता है विश्वास वह पाता है सहयोग।

पहरेदारी से बचे निर्भय रहते लोग ॥ १४११ ॥
यदि जग में ईमान हो चोर न रहने पायँ ।
तो रक्षण की शक्तियाँ अर्जन में लगजायँ ॥ १४१२ ॥
दुनिया की सम्पत बढे बने सभी धनवान ।
आधी चिन्ताएँ घटें मन हो शान्तिनिधान ॥ १४१३ ॥
जीवन यात्रा हो सरल सरल बने व्यवहार ।
जन जनमें सहयोग हो मन मन में हो प्यार ॥ १४१४ ॥
टूट गई सब बन्धुता उजड गया सब ज्ञान ।
इज्जत मिट्टी में मिली खोया जब ईमान ॥ १४१५ ॥
हृदय डिगा ईमान से चले तार बेतार ।
जन जन के मन मन हुआ समाचार विस्तार ॥ १४१४ ॥
सब चौकन्ने होगये निज निज आख पसार ।
बिना कहे ही मचगई बदले की भरमार ॥ १४१७ ॥
पहिरेदारी बढगई घर घर छाये चोर ।
तरह तरह से मचगई लूटमार सब ओर ॥ १४१८ ॥
मानव के आकार में भरे यहा हैवान ।
मानवता कैसे रहे जब न रहा ईमान ॥ १४१९ ॥
मारो मत विश्वास को खोओ मत ईमान ।
करो नहीं अन्याय से धन की खींचातान ॥ १४२० ॥
धन हो अथवा नाम हो अथवा हो उपकार ।
या धनका उपयोग हो रहे न्याय व्यवहार ॥ १४२१ ॥

धनचोर—

जो धनकी चोरी करे वह पूरा हैवान ।
मुफ्तखोर निर्लज्ज वह कपटी मूढ अजान ॥ १४२२ ॥

नाम चोर—

नामविलासी लोलुपी नामचोर अतिचोर ।
पोल खुली थुकने लगा गली गली सब ओर ॥ १४२३ ॥
प्रगट किये निज नाम से पर के सुन्दर काम ।
मूर्त्तिमन्त शैतान वह लूटा जूठा नाम ॥ १४२४ ॥
इधर उधर कुछ बदलकर देदी अपनी छाप ।
नामचोर शैतान वह सब चोरों का बाप ॥ १४२५ ॥

उपकार चोर—

भुला चुका उपकार जो दम्भी नीच अजान ।
उपकृति-चोर कृतघ्न वह लुटा चुका ईमान ॥ १४२६ ॥
जो करता उपकार के बदले में अपकार ।
पापी डाकू नीच वह है पृथ्वी का भार ॥ १४२७ ॥

उपयोग चोर—

करना पर की वस्तु का चोरी से उपयोग ।
वह चोरी उपयोग की है अचौर्य का रोग ॥ १४२८ ॥
चौर्य वस्तु के भेद से चार तरह के चोर ।
मानव के आकार में छिपे हुए हैं ढोर ॥ १४२९ ॥
चार वस्तु की चोरियाँ सब के छः छः ढंग ।
यों चौबीस प्रकार की चोरी से जग तंग ॥ १४३० ॥
छन्न नजर ठग चोर है हैं उद्घाटक चोर ।
बल से अथवा घात से चोर भरे सब ओर ॥ १४३१ ॥
जितना बढता चोरपन जितने बढते चोर ।
उतना ही है जा रहा जगत नरक की ओर ॥ १४३२ ॥
कितना भी प्रच्छन्न हो चौर्य कार्य का ढंग ।

पर न रंग छिपता कभी जग होता बद रंग ॥ १४३३ ॥
बढ़जाता संदेह है उड़जाता विश्वास ।
मुँह से भले न कह सकें पर मन पाता त्रास ॥ १४३४ ॥
छन्न चोरियाँ हैं विविध अगणित उनके ढंग ।
ढग ढंग में है छिपा चोरी का बद रंग ॥ १४३५ ॥

विनिमय चोरी—

मापतौल गड़बड किया बुरा मिलाया माल ।
तो विनिमय चोरी हुई चोरों की ही चाल ॥ १४३६ ॥
दाम बढ़ाकर कहदिये देख जान पहिचान ।
तो विनिमय चोरी हुई हुआ प्रेम बेजान ॥ १४३७ ॥

विभाग चोरी—

पक्षपात के वश हुए किया न योग्य विभाग ।
तो विभाग चोरी हुई साम्यभाव में दाग ॥ १४३८ ॥

अनुज्ञा चोरी—

ली न अनुज्ञा छल किया हाथ लगे सब ओर ।
उचित अनुज्ञा के विना बने अनुज्ञा चोर ॥ १४३९ ॥

भिक्षाचोरी—

छल से भिक्षा मागली रही साधुता दूर ।
तो भिक्षा चोरी हुई की मनुष्यता चूर ॥ १४४० ॥

कणग्राहक चोरी—

छल से कणकण मागकर चला लिया निजकार्य ।
कणग्राहक चोरी हुई दम्भ वहा आ निवार्य ॥ १४४१ ॥

प्रमाद चोरी—

खूब खर्च परधन किया बनकर लापर्वाह ।

तो प्रमाद चोरी हुई हृदय हुआ गुमराह ॥ १४४२ ॥

उरण चोरी—

ऋण न चुकाया पूर्ण पर कही उरण की बात ।
उरण चोर बनकर किया छलकर परधनघात ॥ १४४३ ॥

विस्मृति चोरी—

भूली भटकी वस्तु का हरण किया रख ध्यान ।
तो विस्मृति चोरी हुई निकलगया ईमान ॥ १४४४ ॥

मौन चोरी—

परधन हरने के लिये चली मौन की चाल ।
भीतर ही भीतर बना मौनचोर कंगाल ॥ १४४५ ॥

शब्द छल चोरी—

परधन हर के लिये कही दुटप्पी बात ।
बना शब्द छल चोर वह किया अर्थ का घात ॥ १४४६ ॥

मन में बैठा चोर जब उजड़ गया ईमान ।
बिगड़ गया व्यवहार सब प' पद खींचातान ॥ १४४७ ॥

जितना पाते अर्थ हम खोकरके ईमान ।
कल उससे भी सौगुना होता है नुकसान ॥ १४४८ ॥

चोरी है सब से बुरा घाटे का व्यापार ।
जीवन भी बनता नरक यह जग नरकागार ॥ १४४९ ॥

हरिगीतिका

जिसके न मन में मुफ्तखोरी नित्य श्रम का ध्यान है ।
जो मानता है भोग जीवन से बड़ा ईमान है ॥
रहता वहां सुख चैन से पाता वहां सन्मान है ।
वह साधु है वह देव है उसके हृदय भगवान है ॥ १४५० ॥

—※—

नवमा अध्याय

शील

सदा शील पालन करो करो नहीं व्यभिचार।
शान्त सुखी हैं शील से कुल कुटुम्ब संसार ॥१४५१॥
पतिपत्नी मिलकर रहो करो परस्पर भोग।
रखो सदा सन्तोष घन करो पूर्ण सहयोग ॥ १४५२ ॥
धर्म अर्थ में काममें पतिपत्नी हों संग।
दोनों का मन एक हो भले जुदे हों अंग ॥ १४५३ ॥
परनारी या परपुरुष माता पिता समान।
या भगिनी भाई बने अथवा हों सन्तान ॥ १४५४ ॥
घूरो मत पर नारियाँ रखकर मनमें काम।
मिलने को कुछ भी नहीं होना है बदनाम ॥१४५५॥
आंख लड़ी यदि आंखसे होगे तुम बेचैन।
जगते जगते जायगी आहें भरभर रैन ॥ १४५६ ॥
पड़े ककड़ी आंख में निकले आंसूधार।
आंख पड़े जब आंख में तब दुख का क्या पार ॥१४५७॥
लड़ती तो आंखें मगर दिलमें होते घाव।
दिलमें भरे मवाद से लौके ये दुर्भाव ॥ १४५८ ॥
बीमारी दिखती नहीं दिखता बस बीमार।
घर में सब कुछ है भरा पर उजड़ा घरबार ॥१४५९॥

गीत–५८

क्यों यह आंख लड़ाई। भाई, क्यों यह आंख लड़ाई।
सभ्य वेष में असभ्य बनकर सबकी शान्ति गमाई ॥
भाई क्यों यह आंख लड़ाई ॥ १४६० ॥

दसवां अध्याय
दुर्व्यसन-त्याग

दुर्व्यसनों को छोड दो करो, नहीं दुर्भोग ।
स्वपर-दु:खदाता सदा दुर्व्यसनों का रोग ॥ १४९७ ॥
व्यसन हुआ जिस बात का वह चिपकी दिन रैन ।
आवश्यक हो या नहीं उसके विना न चैन ॥ १४९८ ॥
पाप व्यसन की पार से बहुत बुरी है बात ।
पाप स्वार्थ वश है कभी पाप व्यसन दिनरात ॥ १४९९ ॥
बुरी आदतें छोड़दो सभी तरह नि:सार ।
स्वास्थ्य-नाश धन नाश की सहना पड़ती मार ॥ १५०० ॥
मादक वस्तु न लो कभी करो द्यूत का त्याग ।
तम्बाकू पीना नहीं क्यों हो मुँह में आग ॥ १५०१ ॥
जग में अगणित दुर्व्यसन नष्टकरें धन धाम ।
अपने ही हाथों हुआ अपना जीव गुलाम ॥ १५०२ ॥

मादक वस्तु--

दुर्व्यसनी बनकर किया अगर मद्य का पान ।
पागल से बदतर हुए भूल गया सब भान ॥ १५०३ ॥

गीत--६१

कैसा भूला भान । शराबी कैसा भूला भान ।
अमृत समझकर गरल पिया क्यों किया मद्यका पान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०४ ॥
इज्जत की पर्वाह न तुझको ।
पथ में भी है राह न तुझको ॥
नाली नालों में गिरता है पर न तुझे कुछ ध्यान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०५ ॥

टोपी कहीं कहीं है जूता ।
कुत्ता आकर मुँह में मूता ॥
खारे मीठे का विवेक भी भूल गया नादान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०६ ॥

लड़खड़ करता घर में आया ।
सारे घर में शोर मचाया ॥
विनय प्रेम को भूल मचाई मारपीट अपमान ॥
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०७ ॥

मिहनत करके खूब कमाया ।
पर शराब में सभी गमाया ॥
दाने दाने को होती है घर में खींचातान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०८ ॥

धन वैभव सर्वस्व गमाया ।
पर जगके कुछ काम न आया ॥
जब तन से इन्सान बना तू मन से क्यों हैवान ॥
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०९ ॥

रख विवेक दुर्व्यसन छोड़ दे ।
दुर्विषयों का जाल तोड़दे ॥
चमक उठे मानवता तुझ में छोड़ मद्य का पान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५१० ॥

दोहा

नशा भंग का भी बुरा इससे छोड़ो भंग ।
होता तब बकवाद जब उठती भंग तरंग ॥ १५११ ॥

खाना सोना चौगुना बकना सब बेकार ।
रहता भंग तरंग में हृदय न जिम्मेदार ॥ १५१२ ॥

रूसी की नादानी तूने मतिगति सभी भुलाई ।
मन में जब बारूद भरी तब क्यों यह सींक लगाई ॥
भाई क्यों यह आग लडाई ॥ १४६१ ॥
बूराबूरी छोड़ शील में सब की रही भलाई ।
निज पत्नी को छोड़ समझले सब को बाई माई ॥
भाई क्यों यह आग लडाई ॥ १४६२ ॥

गीत ५९

बाई, क्यों यह आग लडाई ।
उजड गई सुख शान्ति सभ्यता मन में चिन्ता छाई ।
बाई क्यों यह आग लडाई ॥ १४६३ ॥
रूसी की नादानी तूने मतिगति सभी भुलाई ।
मोती का पानी उतार कर कीमत बहुत घटाई ॥
बाई क्यों यह आग लडाई ॥ १४६४ ॥
बूराबूरी छोड शील में सब की रही भलाई ।
अपने पति को छोड़ सभी हैं पुत्र पिता या भाई ॥
बाई क्यों यह आग लडाई ॥ १४६५ ॥

दोहा

जहां शील का राज्य है वहीं पनपता प्यार ।
शील धर्म पर है टिका सारा घर संसार ॥ १४६६ ॥
जहां शील का राज्य है वहीं परम विश्वास ।
जहां परम विश्वास है सच्चा वहीं विलास ॥ १४६७ ॥
शील लुटा सब कुछ लुटा उजड़गया घरबार ।
धन सम्पत किस कामकी जब न हृदय में प्यार ॥१४६८॥
मन इतना वशमें रखो हो न कभी व्यभिचार ।
पतिपत्नी मिलकर रहें रहे एक सचार ॥ १४६९ ॥
नर नारी जब जब मिलो करो न गंदी चाह ।

मर्यादा का ध्यान रख चलना अपनी राह ॥ १४७० ॥

छेडछाड करना नहीं पाओगे अभिशाप ।
डाके से भी चौगुना छेडछाड में पाप ॥ १४७१ ॥

हो न जबर्दस्ती कहीं नरपशुता की खान ।
नरपशु पशु से भी बुरा वह पूरा शैतान ॥ १४७२ ॥

बलात्कार से हो जहा नारी का अपमान ।
वह जग नरक समान है वहा बसे शैतान ॥ १४७३ ॥

बलात्कार सब से बुरा इससे बड़ा न पाप ।
मृत्यु दड से भी नहीं मिटता इसका ताप ॥ १४७४ ॥

परनारी परपुरुष से हो पवित्र सम्बन्ध ।
अणुभर भी व्यभिचार की आ न सके दुर्गन्ध ॥१४७५॥

विधवा अथवा हो विधुर पहिले करो विवाह ।
दम्पति बनने के बिना चलो न रति की राह ॥ १४७६ ॥

जब तक भी कौमार्य हो चलो न रति की राह ।
दम्पति बनने के लिये पहिले करो विवाह ॥ १४७७ ॥

अविवाहित सम्बन्ध भी है पूरा व्यभिचार ।
थोडा भी संकट पड़ा निकल गया सब प्यार ॥१४७८॥

वेश्यागमन करो नहीं उजड़ेगा संसार ।
स्वास्थ्यनाश धननाश है जीवन बंटाढार ॥ १४७९ ॥

तन मन धन सब लुटगया देख चमकता रंग ।
मानो जलते दीप में गिरकर मरा पतंग ॥ १४८० ॥

वेश्या का धंधा बुरा सभी तरह निःसार ।
सोना भी दुर्लभ जहां रति भी है बेगार ॥ १४८१ ॥

इज्जत है न समाज में बड़ी बुरी है मौत ।
बेचारी घुल घुल मरे बन घरघर की सौत ॥ १४८२ ॥

छाया सा यौवन गये कौन पूछता बात ।
'चार दिनोंकी चादनी फेर अन्धेरी रात' ॥ १४८३ ॥
जीवन भी खोया वृथा लादा सिरपर पाप ।
घर घर की सब पत्नियाँ देती हैं अभिशाप ॥ १४८४ ॥
दें न पत्नियाँ शाप ये पालो शीलाचार ।
पक्का हो ऐसा नियम पति न आसकें द्वार ॥ १४८५ ॥
वेश्या के अनुरूप यह शील धर्म की बात ।
पतिवाली के भाग्यका वश्या करे न घात ॥ १४८६ ॥
नर नारी सम्बन्ध में क्षणिक मिलन हो दूर ।
धर्म अर्थ में काम में थिरता हो भरपूर ॥ १४८७ ॥
नरनारी पूरे मिलें रक्खें मन में चाह ।
जिम्मेदारी के लिये करलें प्रगट विवाह ॥ १४८८ ॥
निर्भय या निश्चिन्त रह चलें नीति की गैल ।
खुलकर या छिपकर न हो कोई यहा खेल ॥ १४८९ ॥
बात बात में हो नहीं तलाक की दुर्गंध ।
हो जीवन भर के लिये पति पत्नी सम्बन्ध ॥ १४९० ॥
दो तनमें हो एक मन रहे सदा यह याद ।
तलाक से बचते रहो है तलाक अपवाद ॥ १४९१ ॥
नाममात्र कारण मिला यदि देदिया तलाक ।
अविश्वास तब आगया शील रहा क्या खाक॥ १४९२ ॥
शादी करना प्रेम से मिलकर करना कर्म ।
मिलना जुलना प्रेम से यही शील सद्धर्म ॥ १४९३ ॥

गीत-६०

करो शील-पालन नरनारी ।
दोनों एक प्राण बनजाओ बनकर प्यारे प्यारी ।
करो शील पालन नरनारी ॥ १४९४ ॥

जीवन यह पवित्र निर्भय हो बनो नहीं व्यभिचारी ।
कर देगी विस्फोट कभी भी लुकी छिपी यह यारी ॥
करो शील पालन नर नारी ।' १४६५ ॥
बनो शुद्ध पथ के यात्री तुम जैसे गगनविहारी ।
बनें सत्य शिव सुन्दर जीवन शिव-गौरी-अवतारी ॥
करो शील-पालन नरनारी ॥ १४६५ ॥



दसवां अध्याय
दुर्व्यसन-त्याग

दुर्व्यसनों को छोड़ दो करो नहीं दुर्भोग ।
स्वपर-दुःखदाता सदा दुर्व्यसनों का रोग ॥ १४९७ ॥
व्यसन हुआ जिस बात का वह चिपकी दिन रैन ।
आवश्यक हो या नहीं उसके विना न चैन ॥ १४९८ ॥
पाप व्यसन की पाप से बहुत बुरी है बात ।
पाप स्वार्थ वश है कभी पाप व्यसन दिनरात ॥ १४९९ ॥
बुरी आदतें छोड़दो सभी तरह निःसार ।
स्वास्थ्य-नाश धन नाश की सहना पड़ती मार ॥ १५०० ॥
मादक वस्तु न लो कभी करो द्यूत का त्याग ।
तम्बाकू पीना नहीं क्यों हो मुँह में आग ॥ १५०१ ॥
जग में अगणित दुर्व्यसन नष्टकरें धन धाम ।
अपने ही हाथों हुआ अपना जीव गुलाम ॥ १५०२ ॥

मादक वस्तु—

दुर्व्यसनी बनकर किया अगर मद्य का पान ।
पागल से बदतर हुए भूल गया सब भान ॥ १५०३ ॥

गीत—६१

कैसा भूला भान । शराबी कैसा भूला भान ।
अमृत समझकर गरल पिया क्यों किया मद्यका पान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०४ ॥
इज्जत की पर्वाह न तुझको ।
पथ मे भी है राह न तुझको ॥
नाली नालों में गिरता है पर न तुझे कुछ ध्यान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०५ ॥

टोपी कहीं कहीं है जूता ।
कुत्ता आकर मुँह में मूता ॥
खारे मीठे का विवेक भी भूल गया नादान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०६ ॥

लड़खड़ करता घर में आया ।
सारे घर में शोर मचाया ॥
विनय प्रेम को भूल मचाई मारपीट अपमान ॥
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०७ ॥

मिहनत करके खूब कमाया ।
पर शराब में सभी गमाया ॥
दाने दाने को होती है घर में खींचातान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०८ ॥

धन वैभव सर्वस्व गमाया ।
पर जगके कुछ काम न आया ॥
जब तन से इन्सान बना तू मन से क्यों हैवान ॥
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५०९ ॥

रख विवेक दुर्व्यसन छोड़ दे ।
दुर्विषयों का जाल तोड़दे ॥
चमक उठे मानवता तुझ में छोड़ मद्य का पान ।
शराबी कैसा भूला भान ॥ १५१० ॥

दोहा

नशा भंग का भी बुरा इससे छोड़ो भंग ।
होता तब बकवाद जब उठती भंग तरंग ॥ १५११ ॥
खाना सोना चौगुना बकना सब बेकार ।
रहता भंग तरंग में हृदय न जिम्मेदार ॥ १५१२ ॥

गीत–६२

भँगेडी कैसी तेरी भंग ।
उडा उडा कर लेजाती है तुझको भंग तरंग।
भँगेडी कैसी तेरी भग ॥ १५१३ ॥
सब विकार नंगे होजाते ।
दिनमें भी हैं सपने आते ॥
सपनों की दुनिया में भरते झूठे सारे रग ।
भँगेडी कैसी तेरी भंग ॥ १५१४ ॥
डटकर सोना डटकर खाना ।
बेकारों सा समय गमाना ।
करना बुरी ठठोली करना बकबक सब को तग ।
भँगेडी कैसी तेरी भग ॥ १५१५ ॥
रग रँगीले गीत सुनाना ।
दुष्कार्यों में साहस लाना ॥
सत्कार्यों के लिये मगर पडते हैं ढीले अग ।
भँगेडी कैसी तेरी भंग ॥ १५१६ ॥
तेरा मन होगया भगोडा ।
ज्ञान बुद्धि से रिश्ता तोडा ॥
छोड भग का नशा, रहे मन सदा बुद्धि के संग ॥
भँगेडी कैसी तेरी भग ॥ १५१७ ॥

दोहा

मन की तन की मौत है गाजा चरस अफीम ।
ज्ञान धर्म धन सब लुटा भूले राम रहीम ॥ १५१८ ॥
ये विष विष से भी बुरे विष है मृत्युनिदान ।
पर इन गरलों में बसे मौत और शैतान ॥ १५१९ ॥
और बहुत से हैं नशे जोकि भुलाते भान ।
कहीं बड़ा हैवान है कहीं बड़ा शैतान ॥ १५२० ॥

नशेबाज बनना बुरा मानवता की हान।
ज्ञान मिला जब भाग्य से क्यों खोता नादान ॥ १५२१ ॥

जूवा—

जूवा बुरी बलाय है मन-तन धन का घात।
मुफ्तखोर जीवन बने चिन्तामय दिनरात ॥१५२२ ॥
आई तब शैतानियत मिला मुफ्त का माल।
आई तब हैवानियत जब कि हुए कंगाल ॥ १५२३ ॥
दिल बहलाने के लिये रहे जीत या हार।
लेन देन धन का न हो बढ़े परस्पर प्यार ॥ १५२४ ॥
धन पैसे की लूट के हैं जितने भी खेल।
चूड़ी आदिक फेंकना जूवा की विष बेल ॥ १५२५ ॥
सट्टा या घुड़दौड़ का बड़ा बुरा है द्यूत।
नींद न आती रातभर मड़राता है भूत ॥ १५२६ ॥
हुई मुफ्तखोरी बना जूवा का संसार।
जग की कुछ सेवा नहीं, धन की मारामार ॥ १५२७ ॥
द्यूत छोड़ करके करो जगहित के कुछ काम।
सभी तरह के द्यूत हैं जग के लिये हराम ॥ १५२८ ॥

धूम्रपान—

धूम्रपान है दुर्व्यसन मुँह में लगती आग।
स्वस्थ्य सभ्यता धन घटे करदो इसका त्याग ॥ १५२९ ॥
बीड़ी सिगरिट के पिये दूषित होती वायु।
छाती छन्नीसी बने घट जाती है आयु ॥ १५३० ॥
रात दिवस मनपर लदी तम्बाकू की याद।
अन्नपान से भी अधिक धन पैसा बर्बाद ॥ १५३१ ॥
कभी फफोले भी पड़ें चिकजाता जब अंग।

छेद पड़े पोशाक में आग राख के संग ॥ १५३२ ॥
जलती बीड़ी फेंक दी लगी कहीं पर आग ।
लाखों की सम्पत जली फूटे जग के भाग ॥ १५३३ ॥
इधर नाश होने लगा उधर घटा उत्पन्न ।
खेत हजारों फसगये मिला न उनसे अन्न ॥ १५३४ ॥
तम्बाकू के खेत में यदि पैदा हो अन्न ।
पेट हजारों के भरें मन भी रहे प्रसन्न ॥ १५३५ ॥
करें विधायक कार्य यदि बीडी के मजदूर ।
तो झोपड़ियों के महल बनजायें भरपूर ॥ १५३६ ॥
जीते जी क्यों दे रहे अपने मुँह में आग ।
करो स्वपरहित के लिये धूम्रपान का त्याग ॥ १५३७ ॥

गीत—६३

ओ धुवाँ उड़ानेवाले बनता क्यों मूरख नादान ।
स्वास्थ्य और पैसा देकरके क्यों करता विषपान ॥
ओ धुवा उडानेवाले... .... ॥ १५३८ ॥

जहां जहां तू धुवां उड़ाता ।
वहां विषैली वायु बनाता ॥

पास पड़ौसी का दम घुटता इसका तुझे न ध्यान ॥
ओ धुवां उडानेवाले बनता क्यों मूरख नादान ॥ १५३९ ॥

बीड़ी सिगरिट प्रलय मचाती ।
कभी कहीं भी आग लगाती ॥

होता है विस्फोट राख बनजाता सब सामान ।
ओ धुवां उडानेवाले बनता क्यों मूरख नादान ॥ १५४० ॥

अन्न क्षेत्र भरपूर नहीं हैं ।
खेती में मजदूर नहीं हैं ॥

तम्बाकू खालेती सब को जग हो भले मसान ।

ओ धुवां उड़ानेवाले बनता क्यों मूरख नादान ॥१५४१॥

चिलम चुरुट हुक्का सिगार में।
बीड़ी सिगरिट धुवांधार में ॥
जले कलेजा जले सभ्यता जलें अन्न धन प्रान।
ओ धुवाँ उड़ाने वाले बनता क्यों मूरख नादान॥१५४२॥

बढ़ती जाती है कगाली ।
आधा पेट सदा है खाली ॥
धुवां नहीं उड़ता यह, उड़ते-जीवन के अरमान ॥
ओ धुवां उड़ानेवाले बनता क्यों मूरख नादान॥१५४३॥

छोड छोड यह धुवां उड़ाना।
तन मन धन की राख बनाना॥
बनजा तनिक विवेकी करले हित अनहित पहिचान।
ओ धुवा उड़ानेवाले बनता क्यों मूरख नादान॥१५४४॥

दोहा

कोई भी हो दुर्व्यसन दुख देता भरपूर।
सुख स्वतंत्रता केलिये करो दुर्व्यसन दूर॥ १५४५ ॥
छूट न सकता दुर्व्यसन यों मत बनो निराश ।
धीरे धीरे भी करो दुर्व्यसनों का नाश ॥ १५४६ ॥
यदि पक्का संकल्प हो तो न बड़ी कुछ बात।
क्षणभर में होजायगा दुर्व्यसनों का घात॥ १५४७ ॥
होजायेगी वेदना धीरे धीरे मन्द ।
पाजाओगे एकदिन जीवन का आनन्द ॥ १५४८ ॥
यदि स्वतंत्रता के लिये बनना चाहो शूर ।
तो तुम से जैसे बने करो दुर्व्यसन दूर ॥ १५४९ ॥

—*—

दोहा

जो आलस-पूजा करें उनका यह अवसान ।
गली गली में वे फिरें बने भिखारी श्वान ॥ १५६८ ॥
सच्चे साधु बने बिना भिक्षा का आदान ।
करते विनिमयहीन जो वे हैं श्वान-समान ॥ १५६९ ॥
भिक्षा लेते मुफ्त में करें न कुछ उपकार ।
कितने भी दुबले रहें हैं पृथ्वी के भार ॥ १५७० ॥

गीत - ६५

जीवन तेरा भार । भिखारी जीवन तेरा भार ।
सेवा दिये बिना लेने का तुझ को क्या अधिकार ॥
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७१ ॥
हाथ पांव से है मुस्तंडा ।
क्यों झूठा ले रक्खा डंडा ॥
सेवा का कुछ काम नहीं बस लड़ने को तैयार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७२ ॥
झूठा नचना झूठा गाना ।
है झूठा यह अलख जगाना ।
पेट ठोकना राह रोकना तेरा अत्याचार ॥
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७३ ॥
झूठा तूने वेष बनाया ।
झूठा साइन बोर्ड लगाया ।
बस हराम का खाता है तू फिरता है बेकार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७४ ॥
सदा मुफ्त की रोटी खाना ।
इससे अच्छा है मरजाना ।
रे निर्लज्ज आत्मगौरव का तुझको नहीं विचार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७५ ॥

कभी सडके पर कभी रेलमें।
या मेलों की ठेल पेल में।
चोरी करता माल उड़ाता व्यसनों की भरमार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७६ ॥
ज्ञान नहीं है ध्यान नहीं है।
तिलभर भी ईमान नहीं है।
जग की सेवा छोड़ी करता पापों की बेगार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७७ ॥
पेट मांगता है दो रोटी।
उसके लिये जिंदगी खोटी ।
अरे आलसी मुफ्तखोर क्यों रोटी से लाचार ।
भिखारी जीवन तेरा भार १५७८ ॥
जग में कितना काम पड़ा है।
पर तू आलस लिये अड़ा है।
अरे हरामी मानव जीवन क्यों करता निःसार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७९ ॥
दम्भ दीनताभाव हटाकर।
मानवता का गौरव पाकर ॥
चल, उठ, बन श्रमशील, सभीका–होजाये उद्धार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५८० ॥
यदि तू मिहनत करके खाये।
तो गौरव गिरिपर चढ़जाये ॥
हो समृद्ध जग, हो समृद्ध घर, हो लक्ष्मी अवतार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५८१ ॥

दोहा

पाप-निकदन के लिये श्रम का करो विधान ।
श्रमपूजा में हैं बसे सभी धर्म ईमान ॥ १५८२ ॥
जहा न श्रमपूजा वहा आता पूंजीवाद ।

ग्यारहवां अध्याय

श्रमशीलता

हो सेवामय जीविका बनो परिश्रम-धाम ।
मुफ्तखोर बनना नहीं करते रहना काम ॥ १५५० ॥
छोडो मत श्रमशीलता करो नहीं आलस्य ।
सुख सम्पत्ति विकास का श्रम ही पूर्ण रहस्य ॥ १५५१ ॥
यदि रखना ईमान तो श्रम का रक्खो ध्यान ।
मुफ्तखोर जो बनगया उसका क्या ईमान ॥ १५५२ ॥
जीवन रखने के लिये कुछ लेना अनिवार्य ।
तब कुछ देने के लिये करो सदा श्रमकार्य ॥ १५५३ ॥
श्रम से बढती शक्ति है श्रम से बढता ज्ञान ।
श्रम से सद्गौरव बढ़े श्रम से जग श्रीमान १५५४ ॥
करो सदा उत्साह से जीवन के सब का काम ।
जी न चुराओ काम से यह सच्चा व्यायाम । १५५५ ॥
श्रम का पूरा मान हो श्रम सबको अनिवार्य ।
गौरव का अनुभव करो करके श्रम का कार्य ॥ १५५६ ॥
हर दिन करो शरीरश्रम समय शक्ति अनुसार ।
समझो नहीं शरीरश्रम जीवन की बेगार ॥ १५५७ ॥
परिश्रमी बनकर रहो सभी रंक या राव ।
तन के मन के वचन के श्रम में हो समभाव ॥ १५५८ ॥
वहा वही श्रम है बडा जिसका हो उपयोग ।
उपयोगी श्रम के बिना मिल न सके सद्योग ॥ १५५९ ॥
अपने सब कर्तव्य का रखो सर्वदा ध्यान ।
आलस-पूजा छोडदो आलस मृत्यु समान ॥ १५६० ॥

गीत–६४

आलस पूजा छोड । पुजारी आलस पूजा छोड ।

बिना कामका तेरा जीवन ।
मुर्दों सा कर देता है तन ।
शैतानी का सदन बने मन ।
द आलस्य मरोड । पुजारी, आलसपूजा छोड ॥१५६१॥

क्यों मुर्दों से होड लगाता ।
जब कि रोज तू खाना खाता ।
खापीकर मुर्दा कहलाता ।
बेशर्मी यह तोड़ । पुजारी, आलस पूजा छोड़ ॥ १५६ ॥

आलस में क्या तूने पाया ।
प्रेम और सहयोग गमाया ।
मुफ्तखोर निर्लज्ज कहाया ।
यह जीवन का कोढ । पुजारी आलस पूजा छोड़ ॥१५६३॥

सास रिसानी वहू रिसानी ।
रूसी भाभी ननँद जिठानी ।
सब ही रानी भरें न पानी ।
हुई सभी घरफोड़ । पुजारी आलस पूजा छोड़ ॥ १५६४ ॥

इस तन को जितना ही रगड़ा ।
उतना ही बनता है तगड़ा ।
घर का भी मिटजाता झगड़ा ।
श्रम से नाता जोड पुजारी आलस पूजा छोड ॥ १५६५॥

जीवन श्रमानन्द बनजाये ।
तन के सारे रोग मिटाये ।
घर में क्लेश न आने पाये ।
विपद भगे मुँह मोड । पुजारी आलस पूजा छोड ॥ १५६६॥

जो भी काम सामने आये ।
यदि तू उसको खेल बनाये ।
हँस हँस कर पूरा कर जाये ।
स्वर्ग न पाये होड़ । पुजारी आलस पूजा छोड ॥ १५६७ ॥

दोहा

जो आलस-पूजा करें उनका यह अवसान ।
गली गली में वे फिरें बने भिखारी श्वान ॥ १५६८ ॥
सच्चे साधु बने विना भिक्षा का आदान ।
करते विनिमयहीन जो वे हैं श्वान-समान ॥ १५६९ ॥
भिक्षा लेते मुफ्त में करें न कुछ उपकार ।
कितने भी दुवले रहें हैं पृथ्वी के भार ॥ १५७० ॥

गीत - ६५

जीवन तेरा भार । भिखारी जीवन तेरा भार ।
सेवा दिये विना लेने का तुझ को क्या अधिकार ॥
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७१ ॥
हाथ पांव से है मुस्तंडा ।
क्यों झूठा ले रक्खा डंडा ॥
सेवा का कुछ काम नहीं बस लड़ने को तैयार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७२ ॥
झूठा नचना झूठा गाना ।
है झूठा यह अलख जगाना ।
पेट ठोकना राह रोकना तेरा अत्याचार ॥
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७३ ॥
झूठा तूने वेष बनाया ।
झूठा साइन बोर्ड लगाया ।
बस हराम का खाता है तू फिरता है वेकार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७४ ॥
सदा मुफ्त की रोटी खाना ।
इससे अच्छा है मरजाना ।
रे निर्लज्ज आत्मगौरव का तुझको नहीं विचार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७५ ॥

कभी सड़के पर कभी रेलमें।
या मेलों की ठेल पेल में।
चोरी करता माल उड़ाता व्यसनों की भरमार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७६ ॥
ज्ञान नहीं है ध्यान नहीं है।
तिलभर भी ईमान नहीं है।
जग की सेवा छोड़ी करता पापों की बेगार ।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७७ ॥
पेट मांगता है दो रोटी।
उसके लिये जिंदगी खोटी ।
अरे आलसी मुफ्तखोर क्यों रोटी से लाचार ।
भिखारी जीवन तेरा भार १५७८ ॥
जग में कितना काम पड़ा है।
पर तू आलस लिये अड़ा है।
अरे हरामी मानव जीवन क्यों करता निःसार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५७९ ॥
दम्भ दीनताभाव हटाकर।
मानवता का गौरव पाकर ॥
चल, उठ, बन श्रमशील, सभीका–होजाये उद्धार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५८० ॥
यदि तू मिहनत करके खाये।
तो गौरव गिरिपर चढ़जाये ॥
हो समृद्ध जग, हो समृद्ध घर, हो लक्ष्मी अवतार।
भिखारी जीवन तेरा भार ॥ १५८१ ॥

दोहा

पाप-निकंदन के लिये श्रम का करो विधान ।
श्रमपूजा में हैं बसे सभी धर्म ईमान ॥ १५८२ ॥
जहां न श्रमपूजा वहां आता पूंजीवाद।

सामन्तों के ठाठ से होता जग बर्बाद ॥ १५८३ ॥
मिहनत की रोटी जहां वहां न रहता पाप।
पाप हुआ निर्बीज जब मिटता अपने आप ॥ १५८४ ॥

हरिगीतिका

होती जदा पर श्रम प्रतिष्ठा नित्य श्रम का ध्यान है।
हो अप्रतिष्ठित या प्रतिष्ठित श्रम सदैव महान है।
उपयोगिता का ध्यान हो श्रम का यही विज्ञान है।
श्रममें बसा ईमान है श्रममें बसा भगवान है ॥ १५८५ ॥

—*—

बारहवां अध्याय

निरतिग्रह

दोहा

निरतिग्रह पालन करो करो बचत का दान ।
जाना खाली हाथ है फिर क्यों खींचातान ॥ १५८६ ॥
अतिसंग्रह इस ओर तो अत्यभाव उस ओर ।
अतिसंग्रहवाला बना एक तरह का चोर ॥ १५८७ ॥
जग की सब सम्पत्ति पर है सब का अधिकार ।
योग्य विभाजन चाहिये श्रम सेवा अनुसार ॥ १५८८ ॥
योग्य विभाजन से अधिक यदि हो धन-आदान ।
तो अतिसंग्रह होगया दुःखद चौर्यसमान ॥ १५८९ ॥
सामाजिक सम्पत्ति के हिस्से के अनुसार ।
अगर मिली सम्पत्ति तो हुआ न पापाचार ॥ १५९० ॥
जो जनसेवा के लिये हो उपकरण-कलाप ।
उसका यदि संग्रह किया तो न परिग्रह पाप ॥ १५९१ ॥
पर मालिक बनना नहीं मालिक सकल समाज ।
तुम सेवक ही हो सदा भले मिला हो ताज ॥ १५९२ ॥
जो सेवकता भूलकर जोड़े बहुविध अर्थ ।
करता विविध अनर्थ वह उसका जीवन व्यर्थ ॥ १५९३ ॥
सेवा देकर के करो सेवा का आदान ।
धन लेकर संग्रह किया बनी पाप की खान ॥ १५९४ ॥
सेवा के बदले न हो अतिसंग्रह का कार्य ।
सेवा-विनिमय ठीक है अतिसंग्रह परिहार्य ॥ १५९५ ॥
जितना भी संग्रह हुआ उतनी पर की हानि ।
हुआ अतिग्रह इसलिये हिंसामय दुखखानि ॥ १५९६ ॥

अतिसंग्रह होजाय तो कर लो कुछ सद्भोग।
किन्तु भोग सीमित रहें बसे न तन में रोग ॥ १५९७ ॥
है मन के सद्भोग ये नाम कीर्ति सन्मान।
इन सद्भोगों केलिये धनका करो सुदान ॥ १५९८ ॥
खाओ खाने दो तथा बने एक परिवार।
सब सम्पत्ति समेटकर लाद रहे क्यों भार ॥ १५९९ ॥
निरतिवाद की नीति का रखो सर्वदा ध्यान।
श्रम सेवा अनुसार हों सब ही जन धनवान ॥ १६०० ॥
माया ममता छोड़कर दूर हटाओ द्वंद।
हो सब के आनन्द में अपना भी आनंद ॥ १६०१ ॥
बांट बांट खाडालिये जो कुछ आये हाथ।
सभी पड़ा रहजायगा कुछ न जायगा साथ ॥ १६०२ ॥
कोशिश कितनी भी करो अंत समय सब दीन।
दान भोग या नाश हैं धन की गतियाँ तीन ॥ १६०३ ॥
माया तो माया रहे अचल नहीं होपाय।
उसके फन्दे में पड़ा मूरख जन्म गमाय ॥ १६०४ ॥
माया नचती रातदिन इधर उधर सब ओर।
तू यदि बांधेगा उसे देगी वह झकझोर ॥ १६०५ ॥
नचने दे उसको सदा तू मन बना विशाल।
इधर रहे अथवा उधर तू ही मालामाल ॥ १६०६ ॥
एक जगह माया रुके बने जगत बीमार।
नाली में रुकजाय जल हो दुर्गंध अपार ॥ १६०७ ॥
जल को धन को पवनको रखो सदा गतिमन्त।
एक जगह यदि ये रुकें तो जग दुखी अनंत ॥ १६०८ ॥
माया चंचल देखकर रख जगहित पर ध्यान।

माया लुटजाये कहां जब जग बन्धु-समान ॥ १६०९ ॥
जब निरतिग्रह धर्म तब लुटने की क्या बात ।
माया में भरमा न मन चैन रहे दिनरात ॥ १६१० ॥
टूटा मायापाश तब जब जग बन्धु-समान ।
तब जग बन्धु समान जब निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६११ ॥

गीत – ६६

कर ले निरतिग्रह का ध्यान ।
अधिकाधिक क्यों बोझ लादता बनता क्यों हैवान ।
करले निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६१२ ॥
है स्वभाव से चंचल माया ।
एक घड़ीभर की यह छाया ॥
छाया को मुट्ठी में लेने दौड़ नहीं नादान ।
करले निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६१३ ॥
मिलजुल खाले भेंट भेंट कर ।
कितना खायेगा समेटकर ॥
एक जगह जब सिमटे माया तब होता घमसान ।
करले निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६१४ ॥
निरतिग्रह का ध्यान नहीं जब ।
पूँजीवाद भयकर है तब ।
स्वर्ग सरीखी सामग्री, पर जग है नरक समान ।
करले निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६१५ ॥
जग का एक कुटुम्ब बनाओ ।
मिलजुल बांट बांट खाओ ॥
थोड़ीसी सामग्री में भी जग हो स्वर्ग समान ।
करले निरतिग्रह का ध्यान ॥ १६१६ ॥

—*—

तेरहवां अध्याय

निरतिभोग

दोहा

स्वपर नाश अतिभोग से करो नहीं अतिभोग ।
मितभोगी को स्वस्थता अतिभोगी को रोग ॥ १६१७ ॥

सचमुच भोगें भोग वे जो मितभोगी लोग ।
अतिभोगी जो लोग हैं उनको भोगें भोग ॥ १६१८ ॥

भोगों से बल सुख बढ़े तब तो भोगी लोग ।
भोगों से बल सुख घटे तब हैं भोगी भोग ॥ १६१९ ॥

जो अतिभोगी बनगया वह बनगया गुलाम ।
विषय-दासता में पड़ा भूल गया सब काम ॥ १६२० ॥

योग भोग से भ्रष्ट है अतिभोगी सब ओर ।
देने से लेता अधिक है वह विनिमय-चोर ॥ १६२१ ॥

धर्म लुटे धन भी लुटे लुटता रहे शरीर ।
अतिभोगी का बल लुटे मन हो सदा अधीर ॥१६२२ ॥

जीवन रखने के लिये है यह इन्द्रियग्राम ।
पर इस इन्द्रियग्राम से जीवन हुआ गुलाम ॥ १६२३ ॥

इन्द्रिय का उपयोग है भले बुरे का ज्ञान ।
उनसे अतिभोगी बना भूल रहा नादान ॥ १६२४ ॥

स्पर्शन इन्द्रिय में फसा किया बहुत सम्भोग ।
निचुड़ा सार शरीर का रह न सका नीरोग ॥ १६२५ ॥

बढ़ती इन्द्रिय-दासता आता है व्यभिचार ।
धर्म प्रेम कुल धन लुटे लुटता सब संसार ॥ १६२६ ॥

स्वाद-लोलुपी भूलता भोजन का परिमाण ।
रसनेन्द्रिय के वश हुआ खोता अपने प्राण ॥ १६२७ ॥

माल मुफ्त का मिलगया पर न मुफ्त का पेट ।
स्वाद-लोलुपी ने किया अपना ही आखेट ॥ १६२८ ॥
स्वाद-लोलुपी मूर्ख को इतना नहीं विचार ।
भोजन मिले उधार पर पेट न मिले उधार ॥ १६२९ ॥
लेना है सुस्वाद तो लो मन मन का स्वाद ।
स्वाद तुम्हें ही खा न ले रखना इतनी याद ॥ १६३० ॥
खाओ स्वास्थ्य सम्हालकर आमद के अनुसार ।
जीभ चटोरी के लिये लो मत कभी उधार ॥ १६३१ ॥
चबा चबाकर लो सदा आये पूरा स्वाद ।
स्वास्थ्य बढ़े धन भी बचे हो न अन्न बर्बाद ॥ १६३२ ॥
स्वास्थ्यजनक जलवायु थल जान सकें सब लोग ।
घ्राणेन्द्रिय का है यही जीवन में उपयोग ॥ १६३३ ॥
सूंघ सूंघ करके करो भले बुरे का ज्ञान ।
घ्राणेन्द्रिय की दासता मत करना मतिमान ॥ १६३४ ॥
नेत्रेन्द्रिय का कार्य है दिखजाये संसार ।
भले बुरे प्रत्यक्ष हों रूप और आकार ॥ १६३५ ॥
सरल बने गमनागमन निकट दूर का ज्ञान ।
व्यक्ति व्यक्ति पहिचान हो सरल प्रत्यभिज्ञान ॥ १६३६ ॥
किन्तु न बनना भूल से नेत्रेन्द्रिय के दास ।
रूपलोलुपी के लिये पद पद होता त्रास ॥ १६३७ ॥
रूपलोलुपी जल मरा कर अनंग का संग ।
चमक देखकर दीप की जलकर मरा पतंग ॥ १६३८ ॥
रूपदास बनना नहीं करना कभी न पाप ।
क्षणभगुर सौन्दर्य है पर जीवनभर पाप ॥ १६३९ ॥

कर्णेन्द्रिय का कार्य है स्वर शब्दों का ज्ञान।
होती भाषा द्वार से परमन की पहिचान ॥ १६४० ॥
शिक्षण में सहयोग में उपयोगी है कान।
कानों के सहयोग से हित अनहित का ज्ञान ॥ १६४१ ॥
स्वरलोलुप बनना नहीं भूलोगे सब ज्ञान।
स्वर के माया मोह में कर लोगे विषपान ॥ १६४२ ॥
गीत या कि संगीतमय सुनो सुरीली तान।
कितना इसमें सत्य है रखना इसका ध्यान ॥१६४३॥
मन भी इन्द्रियराज है मनके विषय अपार।
मन के विषयों में फसा डूब मरा संसार ॥ १६४४ ॥
ललचाता मन सब जगह मनमें मोह प्रचंड।
नाच रहा ब्रह्मांड में मन चंचल उद्दंड ॥ १६४५ ॥
मन जब तक वश में नहीं तब तक लंकाकांड।
मन जब वश में हो गया तब वशमें ब्रम्हांड ।१६४६।
मन इन्द्रिय वश में रहें चले न इनकी टेक।
निरतिभोगकी नीति है संयम-और विवेक। १६४७ ॥
सकल इन्द्रियाँ वश रहें भोगो फिर सब भोग।
पर अति से बचते रहो मिले भोग से योग ॥१६४८॥
जीवनभर करना नहीं भोगों का उपवास।
भोगदमन से है सदा विस्फोटों का त्रास ॥ १६४९ ॥
भोगो सीमित भोग सब रखकर पर का ध्यान।
अतिवादी बनना नहीं 'अति' दुखोंकी खान ।१६५०

गीत—६७

तू निरतिभोग का मर्म समझले ज्ञानी।
कर भोग योग संयोग समन्वय ध्यानी ॥ १६५१ ॥

मत बन विषयों का दास भले बन भोगी।
पर भोग न इतने भोग बने तू रोगी॥
रख निरतिभोग का ध्यान समन्वय योगी।
इस निरतिभोग से सुखी जिन्दगी होगी॥
वश में रख सब इन्द्रियाँ कर न मनमानी।
तू निरतिभोग का मर्म समझले ज्ञानी॥ १६५३॥

कोई भ्रम से भोगोपवास करते हैं।
जीवन का सारा रसानन्द हरते हैं॥
कोई जीवन में भोग खूब भरते हैं।
पर वे अतिभोगी भोगों से मरते हैं॥
दोनो अज्ञानी करते खींचातानी।
तू निरतिभोग का मर्म समझले ज्ञानी॥ १६५४॥

सन्तुलित बनायें जीवन सब नरनारी।
शिव सुन्दरता के धाम स्वपर-सुखकारी॥
मध्यम मार्गी अतिभोगहीन दुखहारी।
धर्मार्थमोक्षमय-काम-समन्वयधारी॥
हैवानी हो अतिदूर दूर शैतानी।
तू निरतिभोग का मर्म समझले ज्ञानी॥ १६५५॥



चौदहवाँ अध्याय

वस्त्र

यदि न दूर हम कर सकें पापों का संसार।
बल आया किस काम में बलशाली जीवनभार॥ १६६७ ॥
सदुपयोग बल का यही दूर हटाओ पाप।
पाप मिटे पापी मिटे रहे नहीं दुख ताप॥ १६६८ ॥
डरते हैं जो पाप से करते जगका त्राण।
वे ही हैं सच्चे सबल सफल उन्हीं के प्राण॥ १६६९ ॥
भय अपाय का ही बुरा कायरता का रूप।
जो अपाय भय में फँसा पड़ा अँधेरे कूप॥ १६७० ॥
पद पद भय पैदा करे अगणित रूप अपाय।
जो अपाय से भीत वह हाय हाय चिल्लाय॥ १६७१ ॥
भीति से न संकट हटे वह उपाय की सौत।
संकट आने के प्रथम लादेता है मौत॥ १६७२ ॥
पद पद पर डरते रहें जो जन साहसहीन।
मारे साधन ही मगन रहते हैं वे दीन॥ १६७३ ॥
व्यर्थ न संकट मोलले व्यर्थ न रक्खे भीत।
आवश्यक साहस रहे यह निर्भय की नीति॥ १६७४ ॥
निर्भयता की वृत्ति ही मन की सच्ची शक्ति।
होती मन की शक्ति से सत्येश्वर की भक्ति॥ १६७५ ॥
सत्येश्वर की भक्ति से मिलते सुगुण अनेक।
होते जीवन में सफल संयम शक्ति विवेक॥ १६७६ ॥
यद्यपि मनबल मुख्य पर तनबल भी हो संग।
मनबल तनबल के बिना मानों हुआ अपंग॥ १६७७॥
जैसा तन तुमको मिला उसके ही अनुसार।
शक्ति बढाओ हर तरह करो रक्तसंचार॥ १६७८ ॥
स्वास्थ्य सम्हालो सर्वदा पड़ो नहीं बीमार।

बीमारी भी पाप है निजपर-दुखद अगार ॥ १६७९ ॥
करते रहो विवेक से कुछ साहस के काम ।
जब जैसी सुविधा मिले करो उचित व्यायाम ॥१६८०॥
शस्त्र चलाना सीखलो निजयुग के अनुसार ।
करो न्यायरक्षा सदा रहे न अत्याचार ॥ १६८१ ॥
सेवा का अभ्यास हो आसन का अभ्यास ।
कष्टसहन की शक्ति हो वश में रहे विलास ॥१६८२॥
नारीमें भी चाहिये तन का बल भरपूर ।
अबलापन की वासना रहे सर्वदा दूर ॥ १६८३ ॥
शस्त्र चलाना सीखले करे उचित व्यायाम ।
सीखे रक्षण कार्य में साहस के कुछ काम ॥ १६८४ ॥
ज्यों जल के बाहर हुई तड़प रही हो मीन ।
त्यों घर के बाहर हुई नारी हो क्यों दीन ॥ १६८५ ॥
घर के बाहर भी करे वह साहस के कार्य ।
नर नारी के कार्य में भेद नहीं अनिवार्य ॥ १६८६ ॥
नारी का तन बल सदा लेती है सन्तान ।
फिर भी रहना चाहिये नारी को बलवान ॥ १६८७ ॥
मादा पशु या पक्षिणी देती है सन्तान ।
नर मादा होते नहीं पर इतने असमान ॥ १६८८ ॥
साहस हो अभ्यास हो प्रकृति नहीं हो दीन ।
तो अबला सबला बने जीवन मिले नवीन ॥ १६८९ ॥
नर नारी दोनों बने धीर वीर बलवान ।
बलशाली ही कर सकें यह जग स्वर्ग समान ॥१६९०॥
जिस जीवन में शक्ति है उस जीवन में प्राण ।
प्राणवान ही कर सकें निज पर का कल्याण ॥१६९१॥

गीत-६८

मानव बनजा तू बलवान।

मनमें बल हो, तन में बल हो, जीवन बने महान।

मानव बनजा तू बलवान ॥ १६९२ ॥

दुनिया के अन्धेर मिटाने।

सारे जग में क्रान्ति मचाने ॥

कर ऐसी हुंकार कि दुनिया समझे तुझे जवान।

मानव बनजा तू बलवान ॥ १६९३ ॥

उतर न पाये तेरा पानी।

मरते दम तक रहे जवानी ॥

अंग अंग में यौवन उछले पदपद में उत्थान।

मानव बनजा तू बलवान ॥ १६९४ ॥

गर्जे सदा अत्याचारों पर।

तिलभर भी न रहे मन मे डर ॥

मात अहिंसा दोनों हाथो दे तुझको वरदान।

मानव बनजा तू बलवान ॥ १६९५ ॥

एक समझले खून पसीना।

एक समझले मरना जीना ॥

यम भी चौंक पडे जब देखे तुझ दिलेर की शान।

मानव बनजा तू बलवान ॥ १६९६ ॥

——ॐ——

पंद्रहवां अध्याय

स्वतंत्रता

गौरव की रक्षा करो बनो न कभी गुलाम ।
रहे स्वपर जीवन सदा सुख स्वतन्त्रता धाम ॥१६९६॥
जिनमें नहीं स्वतंत्रता वे कैसे इन्सान ।
बुरे बन्धनों में बंधे वे पूरे हैवान ॥ १६९८ ॥
है स्वतन्त्रता के लिये जनशासन अनिवार्य ।
जनता की सम्मति बिना चले न शासन कार्य ॥१६९९॥
राजा अधिनायक प्रमुख हों सब एकाकार ।
सब शासक दल पर रहे जनता का अधिकार ॥१७००॥
एक देश पर दूसरा रख न सके अधिकार ।
जनता की सरकार हो न्याय नीति अनुसार ॥१७०१॥
एक देश पर दूसरा अगर करे अधिकार ।
तो मानवता नष्ट हो जग हो नरकागार ॥ १७०२ ॥
शासक जन शैतान हों शासित जन हैवान ।
दिख न पड़े इन्सानियत दिख न पड़े इन्सान ॥१७०३॥
एक राष्ट्र परराष्ट्र का यदि कर सका शिकार ।
बना मानवाकार पशु असहनीय भूभार ॥ १७०४ ॥
शासक शासित में हुआ वर्ग जाति का द्वंद ।
एक दासता में फसा एक हुआ स्वच्छंद ॥ १७०५ ॥
कभी कहीं हैवानियत बसा कहीं शैतान ।
मानव को दुर्लभ हुआ मानवता का भान । १७०६ ॥
कोई मालिक बन गये कोई बने गुलाम ।
बारी बारी से हुआ सब का काम तमाम ॥ १७०७ ॥
शिक्षा सम्पत सभ्यता हुआ सभी का नाश ।

सर्वनाश से भरगया जल भूतल आकाश ॥ १७०८ ॥
गुणगण का होने लगा सभी ओर अपमान ।
कहलाया पांडित्य बस परभाषा का ज्ञान ॥ १७०९ ॥
लदे किताबी बोझने बैठ रहे बेकार
पढ़े लिखे बिकने लगे पैसे में दोचार ॥ १७१० ॥
पराधीनता से हुआ बुद्धि हृदय का नाश ।
ज्ञान ज्ञान तो उडगया रही ज्ञान की लाश ॥१७११॥
नष्ट हुआ व्यापार सब फैला घोर अकाल ।
व्यापारी के नाम पर केवल बचे दलाल ॥ १७१२ ॥
शिल्पकला सारी मरी हुई कुशलता दूर ।
शिल्पी सारे बनगये भाड़े के मजदूर ॥ १७१३ ॥
मची लूट चारों तरफ निकले नाना ढंग ।
नंगा बन नचने लगा पूंजीवाद प्रचंड ॥ १७१४ ॥
पराधीनता से हुआ धन वैभव सब नष्ट ।
मानव का आकार पर पशु जीवन क कष्ट ॥ १७१५ ॥
नष्ट हुआ विश्वास सब नष्ट हुआ ईमान ।
परदेशी कानून पर न्याय हुआ कुर्बान ॥ १७१६ ॥
न्याय धर्म खोकर हुए न्यायालय गुमराह ।
लाज शरम सारी लुटी झूठे बने गवाह ॥ १७१७ ॥
तुल तुलकर बिकने लगा न्यायालय में न्याय ।
पैसा जिसके पास हो वही न्याय लेजाय ॥ १७१८ ॥
पैसे की गठरी बिना रहा न वहां प्रवेश ।
लूट छद्म अपमान का बडा भयंकर क्लेश ॥ १७१९ ॥
प्रामाणिकता उठगई लूट सुबह से शाम ।
लेकर देने का नहीं लेता कोई नाम ॥ १७२० ॥

पराधीनता से हुआ नष्ट भ्रष्ट ईमान ।
लूटी गई मनुष्यता गई वचन की आन ॥ १७२१ ॥
न्यायालय भी बनगये अन्यायों के धाम ।
धर्मगृहों में भी हुए पापों के सब काम ॥ १७२२ ॥
किया विदेशी राज्य ने धर्मों को निःसार ।
हुई धर्म के नाम पर दंगों की भरमार ॥ १७२३ ॥
जीवन के नाशक हुए शत शत धर्मस्थान ।
एक सरीखे होगये मन्दिर और मसान ॥ १७२४ ॥
मरघट में मुर्दे जलें वहां न हिंसाकांड ।
पर जिन्दे जलते यहां चीख उठे ब्रह्मांड ॥ १७२५ ॥
हरते धर्मस्थान थे दुनिया भर के पाप ।
पर वे धर्मस्थान सब हुए पाप के बाप ॥ १७२६ ॥
आग लगे संसार में पानी से बुझ जाय ।
पर जब पानी ही जले उसको कौन बुझाय ॥ १७२७ ॥
पराधीनता से हुआ धर्म धर्म में द्वंद ।
देव देव मानो लड़े भगा सच्चिदानन्द ॥ १७२८ ॥
धर्म लुटा धन भी लुटा हुई भयंकर लूट ।
घर घर फैलाई गई महा भयकर फूट ॥ १७२९ ॥
प्रेमालिंगन था जहां मची वहां पर मार ।
झगड़ों के ही घर बने उत्सव तिथि त्योहार ॥ १७३० ॥
फूट डाल शासन करो बनी राज्य की नीति ।
परछांई से भी हुई तब मनुष्य को भीति ॥ १७३१ ॥
पराधीनता से फटे सब समाज के अंग ।
हुआ संगठन नष्ट सब बिगड़ गया सब रंग ॥ १७३२ ॥
शक्ति सभी लूटी गई हाथ हुए निःशस्त्र ।

रोनाधोना ही बचा पराधीन का अस्त्र ॥ १७३३ ॥

अबला थी सबला जहां बालक सिंहकिशोर।

वहां युवक निर्बल हुए कायरता सब ओर ॥ १७३४ ॥

गुंडे गुंडापन करें लूटें बीच बजार।

इधर उधर रोते फिरो रोना ही हथियार ॥ १७३५ ॥

चलने फिरने में लुटे मा बहिनों की लाज।

हाथ मलो रोलो तनिक है निःशंक समाज ॥ १७३६ ॥

जिसका जी चाहे वही देश लूट लेजाय।

टुकर टुकर देखा करो आखिर कौन उपाय ॥ १७३७॥

दो ग्वालों के जंग में गाय खड़ी रँभाय।

जो विजयी बनकर दुहे उसको दूध पिलाय ॥ १७३८॥

पराधीनता से हुआ मानव भी हैवान।

सत्य अहिंसा छिपगये चमक उठा शैतान ॥ १७३९ ॥

पराधीनता है नरक पराधीनता पाप।

दुनिया भर के पाप वह लाती अपने आप ॥ १७४० ॥

जनता की सम्मति बिना जब हो शासन कार्य।

दुख दारिद्र्य विनाश का आना तब अनिवार्य ॥ १७४१॥

कोई अधिकारी रहे कोई भी हो तंत्र।

जनता की आवाज ही हो शासन का मंत्र ॥ १७४२ ॥

नागर के अधिकार हों सर्व श्रेष्ठ अधिकार।

उन्हें न बाधा दे सके कोई भी सरकार ॥ १७४३ ॥

तब तक ही सरकार हो जब तक जन-सहयोग।

उसी समय मिटजाय वह जब न चाहते लोग ॥ १७४४॥

पायें सब अविरोध से जन्मसिद्ध अधिकार।

चलना लिखना बोलना इच्छा के अनुसार ॥१७४५॥
यह शासन का तन्त्र हो या सामाजिक तंत्र ।
हों न बुरे बन्धन कहीं स्वतंत्रता का मंत्र ॥ १७४६ ॥
नर अथवा नारी रहे सब के सम अधिकार ।
जन्मसिद्ध अधिकार हों जनहित के अनुसार ॥१७४७॥
सब के एक समान हों जन्मसिद्ध अधिकार ।
फिर जैसी हो योग्यता वैसा हो व्यवहार ॥ १७४८ ॥
जब कि स्वयंप्रेरित हुए जीवन के सत्कार्य ।
बनती अपने आप तब स्वतंत्रता-अनिवार्य ॥ १७४९ ॥
हो विवेक की प्रेरणा हम खुद छोड़ें पाप ।
स्वतंत्रता उत्तम बनी मिलती अपने आप ॥ १७५० ॥
एक बार की प्रेरणा सदा हटाये पाप ।
स्वतंत्रता मध्यम बनी दूर हटाती ताप ॥ १७५१ ॥
जब जब हो परप्रेरणा तभी पाप हो दूर ।
मानव जीवन में हुई नग्न पशुता भरपूर ॥ १७५२ ॥
जहां सदा परप्रेरणा मानव हांका जाय ।
स्वतंत्रता घायल बने पद पद धक्के खाय ॥ १७५३ ॥
हो स्वतंत्रता के लिये जीवन जिम्मेदार ।
जिम्मेदारी के बिना स्वतंत्रता बेकार ॥ १७५४ ॥
उच्छृंखलता है नहीं स्वतंत्रता का अर्थ ।
विनय विवेक न हो अगर तो स्वतंत्रता व्यर्थ ॥१७५५॥
मिलकर रहे स्वतंत्रता अनुशासन के संग ।
कभी न फीका पड़ सके भक्ति विनय का रंग ॥१७५६॥
अनुशासन या भक्ति से बनता स्वस्थ समाज ।
जीवन के बीमार का होता ठीक इलाज ॥ १७५७ ॥

अगर चिकित्सा के लिये हों बन्धन स्वीकार ।
तो समझो मत मूल से स्वतंत्रता की हार । १७५८ ॥
स्वेच्छा से कर्तव्य का–बन्धन है गुणरूप ।
आत्म नियन्त्रण के बिना गिरते सब दुखकूप ॥१७५९॥
स्वतंत्रता रहने लगी अनुशासन के साथ ।
मानव ने पाये तभी लड्डू दोनों हाथ ॥ १७६० ॥
सुख संयम दोनों मिले संयम सुख का मूल ।
मूल रहा मजबूत जब फूले सुख के फूल ॥ १७६१ ॥
स्वेच्छा से कर्तव्य का पालन हो दिनरात ।
न हो दासता हो विनय लाख बात की बात ॥ १७६२ ॥
सब मानव स्वाधीन हों पायें सब अधिकार ।
स्वेच्छा से सम्बन्ध हो हो प्रेमल व्यवहार ॥ १७६३ ॥
स्वेच्छा से सहयोग हो मिले जुले हों तार ।
स्वर अपने हों किन्तु हो मिली जुली झंकार ॥१७६४॥

गीत–६९

आओ ! स्वतंत्र बनजाये गाये स्वतंत्रता का गान ।
हम हैं मानव अवतारी ।
संयम विवेक बलधारी ॥
क्यों पराधीन हम कहलायें क्यों कहलायें नादान ।
आओ। स्वतंत्र बनजायें गाये स्वतंत्रता का गान ॥१७६५॥
हम अपना राज चलायें ।
शासक हम बने बनाये ॥
कोई हम पर क्यों राज करे समझे हमको हैवान ।
आओ। स्वतन्त्र बनजायें गायें स्वतंत्रता का गान ॥१७६६॥
नौकर सम्हालते हैं घर ।
ये मंत्री लाट गवर्नर ॥

राजा सर्वांत्र अध्यक्ष न हमको दिखलापायें शान।
आओ स्वतंत्र बनजायें गायें स्वतंत्रता का गान॥१७६७॥
मानव मानव सहयोगी।
सब है स्वतंत्रता भोगी॥
शासक शासित का भेद नहीं सब हैं समान इन्सान।
आओ मनुष्य बनजायें गायें मनुष्यता का गान॥१७६८॥
हम मानवता फैलायें।
हम स्वयं प्रेरणा पायें॥
हम जन जन एक समान बने सत्येश्वर की सन्तान।
आओ स्वतंत्र बनजायें गायें स्वतंत्रता का गान॥१७६९॥
शासन का बोझ हटायें।
घर घर वैकुण्ठ बनायें॥
हो सहजतंत्र पूरा सुतंत्र जग एक कुटुम्ब समान।
आओ स्वतंत्र बनजायें गायें स्वतंत्रता का गान॥१७७०॥

सोलहवां अध्याय

सभ्यता

जिसने पाई सभ्यता वही बना इन्सान ।
जो न सभ्यता पासका बना रहा हैवान ॥ १७७१ ॥

वही सभ्यता है जहां शान्त शिष्ट व्यवहार ।
अपनी सुविधा की तरह पर का उचित विचार ॥ १७७२ ॥

सामग्री दुर्लभ रहे किन्तु न हो संघर्ष ।
संकट में भी सभ्य जन दिखलाता है हर्ष ॥ १७७३ ॥

छीनाझपटी के लिये सभ्य नहीं तैयार ।
अपना हिस्सा चाहता अवसर के अनुसार ॥ १७७४ ॥

उचित सुभीता चाहिये नम्बर के अनुसार ।
ठेल पेल की बात को सभ्य नहीं तैयार ॥ १७७५ ॥

अधिकारी बन सभ्य जन होते कभी न चंड ।
गौरव पाने का कभी दिखलाते न घमंड ॥ १७७६ ॥

अगर सभ्य जन के यहां दुश्मन भी आ जाय ।
तो स्वाभाविक रीति से वह स्वागत पाजाय ॥ १७७७ ॥

आवे अगर कृतघ्न जन झगड़ालू या क्रूर ।
तो भी भरभर कलह से सभ्य रहेगा दूर ॥ १७७८ ॥

अगर सभ्य जन से कभी पाये कोई हार ।
फिर भी वह उसके निकट पायेगा सत्कार ॥ १७७९ ॥

अगर सभ्य जन से कभी होगी कोई भूल ।
भरपाई होजायगी रह न सकेगा शूल ॥ १७८० ॥

सभ्य हृदय में धृष्टता पा न सके अवकाश ।
थोड़ी सी भी भूल पर होता खेद प्रकाश ॥ १७८१ ॥

मर्मान्तक गाली नहीं कभी न अनुचित क्रोध ।
आवश्यक होता जहां होता वहीं विरोध ॥ १७८२ ॥
यदि अशान्ति दर्शन कभी आवश्यक होजाय ।
तो अभिनेता की तरह क्षणभर में खोजाय ॥ १७८३ ॥
गुरुजन के आगे नहीं सभ्य दिखाता क्रोध ।
अवसर के अनुसार वह करता मौन विरोध ॥ १७८४ ॥
सभ्य पुरुष रखता सदा नारीपन का मान ।
नारीपन लज्जित न हो रखता इसका ध्यान ॥ १७८५ ॥
जो दे लैंगिक गालियाँ वह असभ्यतम नीच ।
उनका सुनना भी कठिन सभ्य जनों के बीच ॥ १७८६ ॥
गाली हो जितनी अधिक जितनी रहे कठोर ।
उतनी अधिक असभ्यता फैले चारों ओर ॥ १७८७ ॥
सभ्य शान्त अक्षुब्ध बन करो उचित व्यवहार ।
उतनी मिली कुलीनता जितना शिष्टाचार ॥ १७८८ ॥
सच्ची यही कुलीनता शान्त शिष्ट व्यवहार ।
शब्द और स्वर हो नरम अवसर के अनुसार ॥ १७८९ ॥
जातिपांति से है नहीं कुलीनता का साथ ।
ज्यों ही पाई सभ्यता कुल भी आया हाथ ॥ १७९० ॥
किससे तुम पैदा हुए यह विचार बेकार ।
जीवन में जो सभ्यता वह कुलीनता सार ॥ १७९१ ॥
नीचों से भी ऊंच जन ऊंचों से भी नीच ।
कज्जल बनता दीप से कमल-जनक है कीच ॥ १७९२ ॥
ऊंचों में पैदा हुए पर न मिला सत्संग ।
व्यर्थ हुई तब उच्चता बिगड गया सब रंग ॥ १७९३ ॥
सत्संगति मिल जाय तो कुलीनता आजाय ।

कुसंगति मिलजाय तो कुल का नाम डुबाय ॥१७९४॥
सत्संगति पाकर अगर सीखा शिष्टाचार ।
तो कुलीनता मिलगई मन पर शुभ संस्कार ॥१७९५॥
होता है सत्संग से संस्कृति का निर्माण ।
संस्कृति से हो सभ्यता पाजाती है प्राण ॥ १७९६ ॥
मिलने उठने बोलने चलने का क्या ढंग ।
कहां बैठना किस जगह सिखलाता सत्संग ॥ १७९७ ॥
सेवा होती व्यर्थ सी यदि न विनय व्यवहार ।
दुनिया पहिले देखती उत्तम शिष्टाचार ॥ १७९८ ॥
बनो विवेकी संयमी करो उचित व्यवहार ।
देख देखकर सीख लो सारे शिष्टाचार ॥ १७९९ ॥
संयम और विवेक ही सदा सभ्यता मूल ।
इनसे शिष्टाचार सब बनजाते अनुकूल ॥ १८०० ॥
पर की सुविधा का तभी रहने लगता ध्यान ।
बनता सकल समाज है एक कुटुम्ब समान ॥ १८०१ ॥
रहता पर का ध्यान जब तब न घृणा के काम ।
स्वच्छ रहें मन तन वचन स्वच्छ धरा धन धाम ॥१८०२॥
सभ्य न करता गंदगी रखकर पर का ध्यान ।
मलक्षेपण का ध्यान भी सभ्यों की पहिचान ॥१८०३॥
है न सभ्यता-माप ये धन वैभव विज्ञान ।
वहां सभ्यता क्या रहे जहां बसा शैतान ॥ १८०४ ॥
कोई रहे गरीब या कोई रहे अमीर ।
सभ्य सभी जन हो सकें जो समझें परपीर ॥१८०५॥
जंगल में भी सभ्यता रह सकती गुणखान ।
नगरों में भी हैं बसे असभ्यतम शैतान ॥ १८०६ ॥

ग्राम नगर वन सब कहीं सभ्य असभ्य-निवास।
सभ्यों से सुविधा मिले असभ्य जन से त्रास ॥१८०७॥
असभ्यता से बन रहे मूर्ख लोग हैवान।
असभ्यता से बन रहे पढ़े लिखे शैतान ॥ १८०८ ॥
रहती जहाँ असभ्यता वह जग नरक समान।
जिस जग में हो सभ्यता वह जग स्वर्ग समान ॥१८०९॥

गीत-७०

सब से करो सभ्य व्यवहार।
मानवता का प्रथम चिन्ह यह कुलीनता का सार।
सब से करो सभ्य व्यवहार ॥ १८१० ॥
पर को निजसम लेख लेखकर।
सब की सुविधा देख देखकर ॥
स्वच्छ उदार शान्त रह करके पालो शिष्टाचार।
सब से करो सभ्य व्यवहार ॥ १८११ ॥
सभ्य बनो सत्संगी बनकर।
निकले वचन सदा छन छनकर ॥
जीवन में हो सहनशीलता पड़ें सभ्य संस्कार।
सब से करो सभ्य व्यवहार ॥ १८१२ ॥
तुमने यदि न सभ्यता पाई।
तो मानवता वृथा गमाई ॥
धन बल पद अधिकार महत्ता हुए सभी बेकार।
सब से करो सभ्य व्यवहार ॥ १८१३ ॥
क्रोध और अभिमान दूर कर।
बुरी आदतें चूर चूरकर ॥
करो उचित व्यवहार कि जिसमें छलक रहा हो प्यार।
सब से करो उचित व्यवहार ॥ १८१४ ॥

सत्रहवां अध्याय

पुरुषार्थ

दैव दैव अपना नहीं रहना यत्नप्रधान ।
पुरुषार्थी के हाथ में हैं सब दैवविधान ॥ १८१५ ॥
भाग्य में न कुछ भी बदा भाग्य हमारे हाथ ।
सौमें अस्सी अंश हैं भाग्य यत्न के साथ ॥ १८१६ ॥
जो होना था हो चुका भाग्य भूत के साथ ।
अब भविष्य की बात है पुरुषार्थी के हाथ ॥ १८१७ ॥
जन्म भाग्य के हाथ था पौरुष अपने हाथ ।
शक्ति ज्ञान जब मिलगये तब क्यों रहे अनाथ ॥१८१८॥
वर्तमान लो हाथ में हो भविष्य-निर्माण ।
वर्तमान के हाथ में हैं भविष्य के प्राण ॥ १८१९ ॥
यत्न करो भरपूर तुम भाग्य मिलेगा आप ।
भाग्य यत्न से ही बना यत्न भाग्य का बाप ॥१८२०॥
अगर भाग्य प्रतिकूल तो रहने दो प्रतिकूल ।
यत्न सदा करते रहो जो अभाग्य का शूल ॥१८२१॥
यदि अभाग्य बलवान तो रहने दो बलवान ।
धीरज साहस यत्न से अभाग्य का अवसान ॥१८२२॥
पशु ही भाग्याधीन हैं मानव यत्नाधीन ।
भाग्य भरोसे जो रहा पशु समान वह दीन ॥१८२३॥
मानव जो कुछ पासका कला ज्ञान विज्ञान ।
वह न भाग्य का दान है है प्रयत्न का दान ॥१८२४॥
'हम से क्या हो पायगा' कहो न ऐसी बात ।
जितनी तुम में शक्ति हो करो यत्न दिनरात ॥१८२५॥

करतल रेखा देखकर बनो न कभी निराश ।
फँसा फँसाकर मारता रेखाओं का पाश ॥ १८२६ ॥
रेखाओं को देखकर जो भविष्य बतलाय ।
उसके फंदे जो पड़े भारी धोखा खाय ॥ १८२७ ॥
बतलाता है भाग्य जो ले ज्योतिष की ओट ।
वह बेदम करता तुम्हें पौरुष पर कर चोट ॥ १८२८ ॥
अगर निराशा में पड़े तो न रहा उत्साह ।
यदि झूठी आशा हुई तो भी छूटी राह ॥ १८२९ ॥
झूठी आशा मत करो रक्खो बुद्धि विवेक ।
तुम्हें बहा ले जायगा आशा का अतिरेक ॥ १८३० ॥
झूठी आशा में उठी मन में तुंग तरंग ।
बिना नशे के चढ़ गई मन पर मन भर भंग ॥ १८३१ ॥
अगर निराशा आगई समझो आई मौत ।
जीवन चिन्ता में जला बनी निराशा मौत ॥ १८३२ ॥
छूट गये सब यत्न तब जब मन हुआ निराश ।
जगह जगह दिखने लगी चलती फिरती लाश ॥ १८३३ ॥
सामुद्रिक ज्योतिष कहे यदि जीवन की बात ।
तो उससे बचकर रहो करो न जीवन घात ॥ १८३४ ॥
इन सर्वज्ञों से बचो ये छलिया नादान ।
अपना भाग्य न जानते देते पर को ज्ञान ॥ १८३५ ॥
पैसे पैसे के लिये खुद तो मांगें भीख ।
पर पर को देते सदा धन पाने की सीख ॥ १८३६ ॥
भाग्य और दुर्भाग्य का है तन मनमें वास ।
लेकिन हैं सर्वज्ञ ये शनि मंगल के दास ॥ १८३७ ॥
कारण कार्य न जानते हैं न फलाफलज्ञान ।

भटकलपच्चू बात से ठगाते हैं नादान ॥ १८३८ ॥
अटकलपच्चू बात से मन विचलित होजाय ।
असंभाव्य विपदा मिले प्राप्त विभव खोजाय ॥ १८३९ ॥
ये भविष्य की वाणियाँ अथवा दैव विधान ।
छल लेंगे भ्रमभूत ये अगर दिया कुछ ध्यान ॥ १८४० ॥
पौरुष के बलपर रहो रखो सदा उत्साह ।
विपत् प्रलोभन जीतलो छोड़ो कभी न राह ॥ १८४१ ॥

गीत–७१

भाग्य की करो नहीं पर्वाह ।
कैसा भी हो भाग्य किन्तु तुम रखो पूर्ण उत्साह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८४२ ॥
जब है सच्चा ध्येय तुम्हारा ।
तब क्यों हो चिन्ता की छाया ॥
हार जीत का ध्यान छोड़ दो छोड़ो अन्तर्दाह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८४३ ॥
असफलता पर सद्विचार कर ।
यत्न करो फिर फिर सुधारकर ॥
कर्म रेख पर मेख यत्न से बनो भाग्य के शाह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८४४ ॥
आने दो न निराशा मनमें ।
हरदम चमक रहे जीवन में ॥
सत्यभक्ति में मस्त रहो बस निकले कभी न आह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८४५ ॥
विपदाओं से मत घबराओ ।
उनको सदा शिकार बनाओ ॥
विपदा का शिकार करने की रक्खो मन में चाह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८४६ ॥

सत्पथ में सर्वस्व लगाओ ।
दैव भाग्य को नाच नचाओ ॥
सत्पुरुषार्थी बनो चलो तुम सत्येश्वर की राह ।
भाग्य की करो नहीं पर्वाह ॥ १८९७ ॥

अठारहवां अध्याय

उन्नतिशीलता

मानव उन्नतिशील है परम विवेकाधार।
संयम ज्ञान समृद्धि बल बढ़ते युग अनुसार ॥१८४८॥
पहिले ही सर्वज्ञ थे आज नहीं सर्वज्ञ।
ऐसी जिनकी मान्यता वे अज्ञों के अज्ञ ॥ १८४९ ॥
पहिले ही बलवान थे आज नहीं बलवान।
ऐसी जिनकी मान्यता वे भोले नादान ॥ १८५० ॥
पहिले ही धनवान थे आज नहीं धनवान।
ऐसी जिनकी मान्यता वे पूरे अनजान ॥ १८५१ ॥
सभ्य जगत पहिले रहा आज असभ्य निवास।
ऐसी जिनकी मान्यता वे भूले इतिहास ॥ १८५२ ॥
पहिले आया पुण्य था अब आयेगा पाप।
ऐसी जिनकी मान्यता वे भोगेंगे ताप ॥ १८५३ ॥
आज न होसकते यहां तीर्थंकर अवतार।
ऐसी जिनकी मान्यता समझो उन्हें गमार ॥ १८५४ ॥
पहिले ही होते रहे तीर्थंकर जिन बुद्ध।
ऐसी जिनकी मान्यता उनकी बुद्धि अशुद्ध ॥ १८५५ ॥
पहिले सभी स्वतन्त्र थे अब सब होंगे दास।
ऐसी जिनकी मान्यता वे न पढ़े इतिहास ॥ १८५६ ॥
पहिले ही सौंदर्य था समचतस्र संस्थान।
ऐसी जिनकी मान्यता वे हैं अन्धसमान ॥ १८५७ ॥
पहिले ही शृंगार था अब है केवल भार।
ऐसी जिनकी मान्यता वे हैं नये गमार ॥ १८५८ ॥

मंत्र तंत्र के जोर से पहिले उड़े विमान ।
ऐसी जिनकी मान्यता वे बच्चे नादान ॥ १८५९ ॥
उड़ते थे आकाश में देव परी अवधूत ।
ऐसी जिनकी मान्यता उनपर भ्रम का भूत ॥ १८६० ॥
मंत्र तंत्र के जोर से चलते थे दिव्यास्त्र ।
ऐसी जिनकी मान्यता उनके झूठे शास्त्र ॥ १८६१ ॥
एक एक पुर था यहां पहिले कोटि निवास ।
ऐसी जिनकी मान्यता वे न गणित के पास ॥ १८६२ ॥
पहिले सतयुग था सुरस अब है कलियुग दीन ।
ऐसी जिनकी मान्यता वे जीवन में हीन ॥ १८६३ ॥
गणना सतयुग में बड़ी अब कलियुग में हीन ।
ऐसी जिनकी मान्यता वे मति गति से दीन ॥ १८६४ ॥
छोड़ो यह सब मान्यता तथ्य सत्य से हीन ।
रख उत्सर्पणशीलता जगको करो नवीन ॥ १८६५ ॥
छोड़ो ऐसी मान्यता बनकर रहो सपूत ।
आशा करो भविष्य की पकड़ रहे क्यों भूत ॥ १८६६ ॥
जो पुरखों से बढ चला समझो वही सपूत ।
जो पुरखों से गिरचला समझो वही कपूत ॥ १८६७ ॥
खोज करो इतिहास की सीखो कुछ विज्ञान ।
आशा करो भविष्य की रख उन्नति का ध्यान ॥ १८६८ ॥
समझो इस संसार का कैसे हुआ विकास ।
ध्यान लगाकर सीखलो पुरातत्व इतिहास ॥ १८६९ ॥
सूरज से पृथ्वी बनी बड़ा विकट अंगार ।
ज्वालासागर सा हुआ पृथ्वी का अवतार ॥ १८७० ॥
हुई करोड़ों वर्ष में शान्त ऊपरी आग ।

वायु बनी पानी बना जल थल हुए विभाग ॥ १८७१ ॥
तब विचित्र संयोग से आया जीवन मूल ।
तब पृथ्वी बनने लगी प्राणी के अनुकूल ॥ १८७२ ॥
तब जल में पैदा हुए लघु प्राणी अतिदीन ।
एक कोष के जीव वे अंगोपाग-विहीन ॥ १८७३ ॥
नरमादा उनमें न थे न था वहां सम्भोग ।
लम्बे होकर दो बने यही जन्म का योग ॥ १८७४ ॥
फिर प्राणी विकसित हुआ पाये अंगोपाग ।
बहुकोषी प्राणी बना कोष बढे सर्वांग ॥ १८७५ ॥
तब निमित्त के भेद से भिन्न हुए कुछ अंग ।
भिन्न भिन्न प्राणी हुए भिन्न भिन्न रँगढंग ॥ १८७६ ॥
लाखों वर्षों मे बना जलचर का ससार ।
जलचर से थलकर बना हुआ उभय संचार ॥१८७७॥
जैसे मिले निमित्त जब दूर किया ज्यों त्रास ।
वैसे ही वैसे हुआ अंगोपाग-विकास ॥ १८७८ ॥
बीती सौ सौ पीढियाँ बदले कुछ कुछ अंग ।
भरा हजारों वर्ष में जातिभेद का रंग ॥ १८७९ ॥
बना करोड़ों वर्ष में प्राणी का संसार ।
तब धीरे धीरे हुआ मानव का अवतार ॥ १८८० ॥
मानव पैरों से चला खाली पाये हाथ ।
खाली हाथों को मिला मस्तक का भी साथ ॥१८८१॥
पाणि और मस्तक मिले हुए अनोखे काम ।
मानव ने पशु से अधिक बना लिया निजधाम ॥१८८२॥
बीती लाखों पीढियों हुआ विकास अपार ।
मानव में होने लगे पैगम्बर अवतार ॥ १८८३ ॥

ऋषि मुनि योगी तीर्थंकर सत्यभक्त गुणखान।
जग में बरसाने लगे सत्येश्वर का ज्ञान ॥ १८८४ ॥
सब अवतारों ने किया पापों का अवसान।
हर पैगम्बर ने किया मानव का उत्थान ॥ १८८५ ॥
गिरती पड़ती बढ रही मानव की सन्तान।
गिरना पड़ना भूलकर दो टोटल पर ध्यान ॥ १८८६ ॥
नई नई बीमारियाँ यदि दिखती हैं आज।
तो देखो आजायगा कल ही नया इलाज ॥ १८८७ ॥
पतझड पर रोओ नहीं होगा इसका अन्त।
जब पतझड़ होजायगा होगा यहां वसन्त ॥ १८८८ ॥
बढते दिखते हैं तुम्हें धन वैभव विज्ञान।
सयम की यदि है कमी तो उसका भी ध्यान ॥ १८८९ ॥
सुना रहे हैं रातदिन पैगम्बर पैगाम।
गूज रहा है सब जगह सत्येश्वर का नाम ॥ १८९० ॥
कैसे समझेगा नहीं मानव निज कल्याण।
सत्येश्वर के भक्त जब लगा रहे हैं प्राण ॥ १८९१ ॥
कब तक यह हैवानियत भोगेगा इन्सान।
कब तक आग लगायगा छुपा हुआ शैतान ॥ १८९२ ॥
सत्येश्वर भगवान को है इस जग का ध्यान।
मात अहिंसा देरही हँस हँसकर वरदान ॥ १८९३ ॥
जागे दृढ संकल्प ले सत्येश्वर के दास।
जीवन का बलिदान कर दूर करेंगे त्रास ॥ १८९४ ॥
मिट्टी में मिल जायँगे सत्येश्वर के भक्त।
पर न वृथा जायगा एक बूंद भी रक्त ॥ १८९५ ॥
मिटकर भी कर जायँगे सफल सुखी संसार।

बूंद बूंद के खाद से कल्पवृक्ष तैयार ॥ १८९६ ॥
मिल जायेगी जगत को विश्वहितंकर दृष्टि ।
होगी स्वार्थ परार्थ की परम समन्वित सृष्टि ॥ १८९७ ॥
मानवतन बनजायगा मानवता का धाम ।
घर घर में फल जायँगे धर्म अर्थ शिव काम ॥१८९८॥
इनेगिने रह जायँगे फिर भी यदि शैतान ।
तो उनके संहार का जग रक्खेगा ध्यान ॥ १८९९ ॥
पापी सब मिट जायँगे सफल न होगा पाप ।
किसी तरह मिट जायगा पापी जनका ताप ॥ १९०० ॥
जब तक प्रलय न आयगा पृथ्वी का संहार ।
विकसित होता जायगा तब तक यह संसार ॥ १९०१ ॥
बीच बीच में पाप का अगर बढ़ेगा ताप ।
सत्यभक्त आजायँगे तो अपने ही आप ॥ १९०२ ॥
सत्येश्वर सन्देश से जग समझेगा मूल ।
गिन गिनकर बिन जायँगे पथके सारे शूल ॥ १९०३ ॥
छोड़ेंगे सब नरक पथ हो न सकेगी शाम ।
इतने में दिख जायगा सत्येश्वर का धाम ॥ १९०४ ॥
स्वार्थी जग के हृदय का व्यापक होगा स्वार्थ ।
स्वार्थ जगत का स्वार्थ बन छादेगा परमार्थ ॥ १९०५ ॥
स्वार्थ सिद्धि को चाहिये अधिकाधिक परमार्थ ।
जितना ही परमार्थ हो उतना सधता स्वार्थ ॥१९०६॥
है इन्द्रियसुख से अधिक मन का सुख बलवान ।
मन के सुख की चाह में मानवता का ध्यान ॥१९०७॥
इन्द्रियसुख में रमरहा पशुओं का संसार ।
मनके सुख से घट रहा नरपशुता का भार ॥१९०८॥

अगर मानसिक सुख बना मोह और अभिमान।
तो मानवता घटगई फैलगया शैतान ॥ १९०९ ॥
जितनी बढ़ी कुटुम्बिता जितना फैला प्यार।
उतनी मानवता बढ़ी बना सुखी संसार ॥ १९१० ॥
जितनी मानवता बढ़ी उतने छूटे द्वंद।
भोगानन्दों से अधिक पाया प्रेमानन्द ॥ १९११ ॥
मानवता विकसित हुई मिला प्रेम का स्वाद।
स्वार्थ बना परमार्थ सा भोग न आये याद ॥ १९१२ ॥
मानव जब बालक रहे खेले पत्थर धूल।
कौड़ी में ही रम रहे जोड़े ऊलजलूल ॥ १९१३ ॥
ज्यों ज्यों बढ़ती उम्र है ज्यों ज्यों बढ़ता ज्ञान।
कौड़ी पत्थर धूल के छूटें त्यों अरमान ॥ १९१४ ॥
बालकपन के खेल के छूटें सारे द्वंद।
तुच्छ दुःख सब भूलकर चाहे प्रेमानन्द ॥ १९१५ ॥
मानव जग का बालपन होजायेगा दूर।
मानव की होजायँगी तुच्छ वृत्तियाँ चूर ॥ १९१६ ॥
सब के प्रति बनजायगा मानव जिम्मेदार।
भोगानन्दों से अधिक मीठा होगा प्यार ॥ १९१७ ॥
भोगानन्दों के सकल दूर हटेंगे द्वंद।
घर घर में छा जायगा जगभर प्रेमानन्द ॥ १९१८ ॥
होगा निज सुख के लिये पर के सुख का ध्यान।
पर के सुख में आत्मसुख जननी जनक समान ॥ १९१९ ॥
स्वार्थ न होगा नष्ट पर विकसित होगा स्वार्थ।
कौटुम्बिकता फैलकर लादेगी परमार्थ ॥ १९२० ॥
बढ़ती विद्या बुद्धि जब बढ़ता है विज्ञान।

सुख शान्ति भी बढ़ जायगी होगा जगत जवान ॥१९२१॥
भाग रहा हैवान है चमक रहा इन्सान ।
धीरे धीरे जायगा घट घट से शैतान ॥ १९२२ ॥
जग तो उन्नतिशील है कल से बढ़कर आज ।
यत्न करो बनजायगा यह जग सत्यसमाज ॥ १९२३ ॥
कलियुग कलियुग मत कहो कहो न पंचम काल ।
यत्न करो बन जायँगे सब सतयुग के लाल ॥१९२४॥
असफलता से मत डरो सदा सुधारो भूल ।
यत्न करो मिल जायगी सत्येश्वर पद धूल ॥१९२५॥
गिर गिरकर भी फिर उठो मानो कभी न हार ।
यत्न करो होजायगा इस जग का उद्धार ॥ १९२६ ॥
जीवन में फल अफल का करो न चिन्ता ध्यान ।
यत्न करो पाजायगी उसका फल सन्तान ॥ १९२७ ॥
पीढ़ी पीढ़ी बढ़ चलो हो न यत्न में ढील ।
रक्खो दृढ़ विश्वास यह जग है उन्नतिशील ॥ १९२८ ।
उन्नति का विश्वास हो उन्नति की हो चाह ।
उन्नति का ही ध्यान हो उन्नति की ही राह ॥ १९२९ ॥

गीत–७२

रख उन्नति का ध्यान । हृदय में रख उन्नति का ध्यान ॥
तन जवान हो या बूढ़ा हो पर मन रहे जवान ।
हृदय में रख उन्नति का ध्यान ॥ १९३० ॥
भूतकाल के स्वप्न छोड़कर ।
वर्तमान का रस निचोड़कर ॥
भावी से सम्बन्ध जोड़कर ।
कर उन्नति का गान । हृदय में रख उन्नति का ध्यान ।१९३१॥

छोड़ छोड़ कलियुग का रोना।
रो रोकर क्यों जीवन खोना॥
जीते जी क्यों मुर्दा होना।
कर युग की पहिचान। हृदय में रख उन्नति का ध्यान ।१६३२।
आने दे न निराशा मनमें।
आशा झलके वचन वचन में॥
उन्नति की उमंग जीवन में।
बन पुरुषार्थप्रधान। हृदयमें रख उन्नतिका ध्यान ।१६३३।
हमें नया संसार बनाना।
सतयुग का संगीत सुनाना॥
मानव में मानवता लाना।
जग हो स्वर्ग समान। हृदयमें रख उन्नतिका ध्यान ।१६३४।

गीत–७३

बनेगा एक नया संसार।
खुलेगा सत्येश्वर का द्वार॥
मनमन का शैतान भगेगा।
मनमन का हैवान भगेगा॥
मनमन का इन्सान जगेगा।
घर घर में घट घट में होगा संयम का अवतार।
बनेगा एक नया संसार। खुलेगा सत्येश्वरका द्वार ॥१६३५॥
जाति न होंगी न्यारी न्यारी।
एक बनेंगे सब नर नारी॥
एक बनेगी दुनिया सारी।
मानव भाषा से मानवता पायेगी विस्तार।
बनेगा एक नया संसार। खुलेगा सत्येश्वरका द्वार।१६३६।
धर्म और विज्ञान मिलेंगे।
मनमन के अरमान मिलेंगे॥
भक्तों से भगवान मिलेंगे।

घर घर धन वैभव छायेगा घट घट संयम प्यार ।
बनेगा एक नया संसार । खुलेगा सत्येश्वर का द्वार ।१९३७।
जग को उन्नतिशील बनाओ ।
सतयुग के सब साज सजाओ ॥
अणुभर भी न निराशा लाओ ।
स्वर्ग और वैकुंठ यहीं पर लेवेंगे अवतार ।
बनेगा एक नया संसार । खुलेगा सत्येश्वर का द्वार ।१९३८।

उन्नीसवां अध्याय

सुशासक

जग की उन्नति के लिये सत् शासन अनिवार्य ।
सत शासन मे होसकैं उन्नति के सब कार्य ॥१९३९॥
सत् शासन होता वहीं जहां सुशासक लोग ।
शासक जन करते नहीं अधिकारों का भोग ॥१९४०॥
जगसेवा के ही लिये मिलते हैं अधिकार ।
यदि मद हो अधिकार में तो डूबे संसार ॥ १९४१ ॥
योग्य व्यक्ति ही पासके शासन के अधिकार ।
तो सब तंत्र सुतंत्र हों मिले राम अवतार ॥ १९४२ ॥
वे ही शासन सूत्र हैं जिनमें संयम ज्ञान ।
काम करें निस्वार्थ बन रक्खें जगहित पर ध्यान ॥१९४३॥
ज्ञान नहीं संयम नहीं पूरे रिश्वतखोर ।
ऐसे जन शासक बनें लूट मचे सब ओर ॥ १९४४ ॥
शासक जन लेते जहां जन से भेंट इनाम ।
चौपट होते हैं वहां शासक के सब काम ॥ १९४५ ॥
एक तंत्र भी हो सफल हों उन्नति के काम ।
मिलजाये सौभाग्य से अगर सुशासक राम ॥ १९४६ ॥
प्रजातंत्र तब ही सफल मिलें सुशासक लोग ।
यदि स्वार्थी शासक मिलें प्रजातंत्र भी रोग ॥ १९४७ ॥
एक तंत्र से है भली प्रजातंत्र की रीति ।
शासक को रहती जहां जनता से कुछ भीति ॥ १९४८॥
पर जनता को चाहिये अच्छा करे चुनाव ।
ऐसा न हो चुनाव हो जूए का ही दाव ॥ १९४९ ॥

रक्खें सदा चुनाव में सब के हित का ध्यान ।
योग्य सुशासक के लिये सदा करो मतदान ॥ १९५० ॥
जो धनबल से चाहते शासन के अधिकार ।
उनको मत मत दो कभी वे करते व्यापार ॥ १९५१ ॥
व्यापारी की नीति है हो न कभी नुकसान ।
पूंजी रक्खे हाथ में रहे नफा पर ध्यान ॥ १९५२ ॥
यदि धन से शासक बने धन से बेंचे न्याय ।
रहता उसका लक्ष्य यह हो दिन दूनी आय ॥ १९५३ ॥
पीडित न्याय न पासके जीते रिश्वतखोर ।
प्रजातंत्र के नाम हो हाय हाय सब ओर ॥ १९५४ ॥
जाति धर्म के नाम से जो चाहें अधिकार ।
उनको मत मत दो कभी करो न द्वंद प्रसार ॥१९५५॥
अपनी अपनी जाति का पक्ष करें सब लोग ।
सच्चा सेवक क्या मिले प्रजातंत्र हो रोग ॥ १९५६ ॥
जाति धर्म के द्वंद से मच जाये घमसान ।
सच्चे शासक की कभी हो न सके पहिचान ॥ १९५७ ॥
शासक ऐसा चाहिये जिसका सब से प्यार ।
जाति धर्म के पक्ष सब जिसके मन निःसार ॥१९५८॥
शासक ऐसा चाहिये जिसका मन निष्पक्ष ।
ज्ञानी हो हो संयमी हो सेवा में दक्ष ॥ १९५९ ॥
शासक सेवक ही रहे रख सेवा पर ध्यान ।
जनता से वह ले नहीं मान पान सन्मान ॥ १९६० ॥
निश्चित वेतन मिलगया सेवा का प्रतिदान ।
अब क्यों मिलना चाहिये पूजा या सन्मान ॥१९६१॥
शासक होने से नहीं होता व्यक्ति महान ।

वह महान जिसमें रहे संयम सेवा ज्ञान ॥ १९६२ ॥
शासक सदा विनीत हो सेवाभावी दक्ष ।
जनहित पर ही ध्यान रख कार्य करें निःपक्ष ॥१९६३॥
शासक ऐसा चाहिये भरे न निज भंडार ।
परिमित वेतन ले सदा विनिमय के अनुसार ॥१९६४॥
शासक के सब काम हों जनमत के अनुसार ।
सत्येश्वर का दास बन करे सुखी संसार ॥ १९६५ ॥
जनहित जनमत के लिये छोड़े सारे स्वार्थ ।
सच्चे शासक के लिये जनसेवा परमार्थ ॥ १९६६ ॥
जनहित हो जिसमें अधिक हो वह शासनतंत्र ।
सिद्ध करे शासक जहां जनसेवा का मंत्र ॥ १९६७ ॥
जनसेवा का ध्यान रख हों शासन के काम ।
जगह जगह दिखने लगें जगमें शासक राम ॥ १९६८ ॥

गीत–७४

जगत में आयें शासक राम ।
जनमत के अनुसार सदा हों शासन के सब काम ।
जगत में आयें शासक राम ॥ १९६९ ॥
शासन में न न्याय विकता हो ले मनचाहे दाम ।
धन बल माया मोह महत्ता नयके रहें गुलाम ॥
जगत में आयें शासक राम ॥ १९७० ॥
खुला हुआ दर्बार सदा हो रहे सुबह या शाम ।
शासक के जीवन में उतरे सत्येश्वर का नाम ॥
जगत में आयें शासक राम ॥ १९७१ ॥

गीत–७५

सत्यभक्तों की हो सरकार ।
जन सेवा के लिये खुला हो जिसका निशदिन द्वार ।

सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७२ ॥

निर्बल निर्धन निःसहाय की जो सुन सके पुकार।
सहनशील बन उठा सके जो जनसेवा का भार ॥
सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७३ ॥

करे अपव्यय दूर सर्वदा करे न व्यय बेकार।
अपने या अपनों के खातिर करे न लूटामार ॥
सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७४ ॥

अहंकार जिसमें न जरा हो पाले शिष्टाचार।
नागरिकों के लिये सदा हो विनयशील व्यवहार ॥
सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७५ ॥

पद पाकर न महत्ता समझें बनकर जिम्मेदार।
विनय न्याय सेवा सहायता हो सब का अवतार ॥
सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७६ ॥

जनहित के अनुसार काम हो रख जनहित आधार।
हो स्वतंत्रता पूर्ण व्यवस्था बने नया संसार ॥
सत्यभक्तों की हो सरकार ॥ १६७७ ॥



बीसवां अध्याय

युद्ध-विरोध

जब तक जगमें युद्ध हैं तब तक कैसी शान्ति ।
शान्ति बिना शासन नहीं है शासन की भ्रान्ति ॥ १९७८ ॥
युद्ध सरीखा पाप भी अगर राज्य का अंग ।
तो मानवता पर चढा पशुता का ही रंग ॥ १९७९ ॥
युद्धों के अन्धेर में न्याय न आता हाथ ।
लाठी जिसके हाथ है भैंस उसी के साथ ॥ १९८० ॥
लड़ लड़कर यदि कट मरे आदम की औलाद ।
मानव जग दुर्लभ बने नरक बने आबाद ॥ १९८१ ॥
अगर व्यक्ति खूनी बने कहलाता अन्याय ।
सरकारें खूनी बने तो यह क्या कहलाय ॥ १९८२ ॥
हत्या करने के लिये हैं तैयार जवान ।
मानव बनकर भूलते मानवता का ध्यान ॥ १९८३ ॥
करते जो मजदूर बन उत्पादन का काम ।
वे सैनिक बनकर करें जग का काम तमाम ॥ १९८४ ॥
प्राण गलाकर रस बने देह जलाकर खाक ।
सभी कारखाने बने जैसे कुंभीपाक ॥ १९८५ ॥
जो देते हैं जगत को जीवन का सामान ।
वे ही विष देने लगे दुनिया बने मसान ॥ १९८६ ॥
ज्यों ही आया युद्ध त्यों कठिन हुआ आराम ।
पल की भी साता नहीं मरण बना विश्राम ॥ १९८७ ॥
अर्बों की सम्पत्ति से जो बन सके जहाज ।
पहुँचे वे पाताल में पड़ी युद्ध की गाज ॥ १९८८ ॥

डूब गये जलयान वे जो थे नगर समान ।
धन दौलत का होगया सागर में अवसान ॥ १९८९ ॥
जिन्हें बनाने में थके लाख लाख मजदूर ।
वे पहुँचे पल में अतल मानव कितना क्रूर ॥ १९९० ॥
पीढ़ी पीढ़ी श्रम किया हुए नगर निर्माण ।
पर बमवर्षा नगर के क्षण में खींचे प्राण ॥१९९१॥
सब कुछ था पर सब गया हुए व्यर्थ सब साज ।
दीप जलाना भी कठिन अंधकार का राज ॥ १९९२ ॥
गिद्धों से छाने लगे नभ में ये नभयान ।
छाई मौत जहां तहां दुनिया हुई मसान ॥ १९९३ ॥
घर में भी सोना कठिन बाहिर छाई मौत ।
छाई है शैतानियत मानवता की सौत ॥ १९९४ ॥
चूहों जैसे बिल बने वहां बिताई रात ।
घोर अंधेरे में रहे फिर भी वज्राघात ॥ १९९५ ॥
जलता तेल बहा कहीं बहा कहीं तेजाब ।
नींद बिना दिखने लगा दोजख का ही ख्वाब ॥१९९६॥
ईंटों से ईंटें बजीं हुए भवन सब धूल ।
नगरी और मसान का भेद गये सब भूल ॥ १९९७ ॥
दाने दाने के लिये तरस रहे घर बार ।
किन्तु युद्ध में रात दिन खेतों का संहार ॥ १९९८ ॥
नग्न नृत्य करने लगा चारों ओर अकाल ।
पेट पींठ से मिल गया चुचके दोनों गाल ॥ १९९९ ॥
चुल्लूभर पानी नहीं कठिन पिपासा भोग ।
आंसू से भी ओंठ को सींच न पाये लोग ॥ २००० ॥
चिथड़े चिथड़े के लिये हुआ जगत बेहाल ।

नंग धड़ंग हुए सभी अक्खड़ अकड़ विकराल ॥२००१॥

कण कण चीजों के लिये तरस रहे घरबार ।
किन्तु कारखाने मिटे खाकर बम की मार ॥२००२॥

बहे खून के नद नदी आया खूनी पूर ।
मानवता जिसमें बही बहे जगत के शूर ॥ २००३ ॥

बालक बूढ़े नारियाँ सभी मौत के घाट ।
कट कट कर जाने लगे लगी मौत की हाट ॥२००४॥

क्या नर क्या नारी सभी बम के हुए शिकार ।
लाखों साथी बिछुड़कर पहुँच गये यमद्वार ॥२००५॥

तड़प तड़पकर मरगये बच्चे दीन अनाथ ।
अभिभावक बिछुड़े सभी रहा मौत का साथ ॥२००६॥

चिल्लाहट ऐसी मची गूंज उठा ब्रह्माण्ड ।
पुर सब ज्वालामय हुए घर घर लंकाकाण्ड ॥ २००७ ॥

पहुँचगये जो फौज में सीखे वे व्यभिचार ।
मा बहिनों की लाज का करते हैं संहार ॥ २००८ ॥

नारी का सन्मान क्या मानव बना पिशाच ।
बलजोरी व्यभिचार का निर्दय नंगा नाच ॥ २००९ ॥

हुआ विश्व सब पापमय बचा न कोई पाप ।
कण कण पर लगने लगी सर्वनाश की छाप ॥२०१०॥

जीते भी हारे बने हारे मृतक समान ।
यों दोनों हारे मरे जीतगया शैतान ॥ २०११ ॥

मानवता की जीत तब जब कि युद्ध हो बन्द ।
न्याय नीति से काम हो शक्ति न हो स्वच्छन्द ॥२०१२॥

पशुबल का गर्जन मिटे युद्ध बन्द होजाय ।
जग के सकल विवाद का हो निर्णायक न्याय ॥२०१३॥

न्यायालय में न्याय का जो करती है कार्य ।
उन सरकारों के लिये युद्ध नहीं अनिवार्य ॥२०१४॥
जनहित को धन है नहीं यह रोना दिनरात ।
लडने मरने के लिये अर्व खर्व की बात ॥ २०१५ ॥
युद्ध बड़ी शैतानियत वृथा विकट संहार ।
मानवता कैसे सहे इन युद्धों का भार ॥ २०१६ ॥
जब तक होते युद्ध हैं तब तक जगत असभ्य ।
मानव तन दिखते मगर मानव बहा अलभ्य ॥२०१७॥
मानवता तब आसके जब कि युद्ध हो बन्द ।
तभी सभ्यता दिखसके तब ही हो आनन्द ॥ २०१८ ॥
युद्ध बन्द करके करें न्याय नीति का ध्यान ।
मनुष्यता का कर सकें मनुष्य में आह्वान ॥ २०१९ ॥

गीत—७६

हे मनुष्यते मानव मन में आओ ।
सभ्यता इसे सिखलाओ ॥
मानव शैतान बना है ।
पशुता में आज सना है ॥
सुख वैभव सभी फना है ।
कर रहा यहां, मानवभक्षण मानव ।
मानव के तन में दानव ॥ २०२० ॥
यद्यपि है होती खेती ।
पृथिवी अनाज है देती ॥
पर रणचंडी हर लेती ।
हैं तड़प रहे, कण कण को नर नारी ।
कृत्रिम अकाल है भारी ।
दिनरात मिल हैं चलतीं ।

पर जनता को क्या फलती ॥
सब युद्धानल मे जलती ।
हैं तरस रहे, चिथडे चिथडे को जन ।
सब ठिठुर रहे नंगे तन ॥ २०२२ ॥
घर नष्ट भ्रष्ट हैं होते ।
भय से नर नारी रोते ॥
पलपल में जीवन खोते ।
हैं गर्ज रहे, नभ में नभचर गाढे ।
कानों के पर्दे फाडे ॥ २०२३ ॥
यह रुद्र गणों का धम धम ।
या प्रलयंकर का ढमढम ।
गिरते बम रोज धमाधम ।
यह महाप्रलय, नर पर नर ही लाया ।
सब जगह मौत की छाया ॥ २०२४ ॥
घर कब्रिस्तान बने हैं ।
लोहू में नगर सने हैं ॥
सिर पर यमदूत तने हैं ।
अब कुचल रहे, घर को घर के छप्पर ।
ये रणचंडी के खप्पर ॥ २०२५ ॥
रक्षित अब कौन किलों में ।
भय चिन्ता लिये दिलों में ॥
छिपते हैं सभी बिलों में ।
हा ! मानव ने, चूहों की गति पाई ।
खोदे हैं खंदक खाई ॥ २०२६ ॥
चढ़ता मानव पर मानव ।
हुंकार उठा भैरव रव ॥
मानव बनता है दानव ।
शैतान अरे, मानव मन में आया ।

जिसने यह नरक बनाया ॥ २०२७ ॥
नचरहीं अनल बालाएं ।
ये प्रलयंकर ज्वालाएँ ॥
जलरहीं भवन-मालाएँ ।
हैं खून कहीं, कहीं आग की लाली ।
कैसी होली दीवाली ॥ २०२८ ॥
सब विवश हुए नरनारी ।
पिसती जनता बेचारी ॥
फिरती है मारी मारी ।
अब अबलाएं, कैसे शील बचायें ।
कैसे शैतान भगायें ॥ २०२९ ॥
शैतान नग्न नचता है ।
सब कहीं नरक रचता है ॥
क्या घमासान मचता है ।
सब देशों में, शैतानी दल छाया ।
जिसने यह प्रलय मचाया ॥ २०३० ॥
जागो हे शंकर जागो ।
जागो क्षेमकर जागो ॥
हे विश्वहितकर जागो ।
हे सत्येश्वर सब को राह बताओ ।
भाईचारा फैलाओ ।
हे मनुष्यते, मानव मन में आओ ।
सभ्यता हमसे सिखलाओ ॥ २०३१ ॥

दोहा

मानव में हो सभ्यता रुकें युद्ध के कार्य ।
युद्ध रोकने के लिये यत्न करो अनिवार्य ॥ २०३२ ॥
जाति पंथ से हो परे शासन का सब तंत्र ।

मारे शासन कार्य में जनमत ही हो मत्र ॥ २०३३ ॥
एक देश पर दूसरा कर न सके अधिकार।
मिलजुलकर सब प्रेम से करें एक संसार ॥ २०३४ ॥
पूंजी का हमला न हो हों शोषण सब बन्द।
श्रम की रोटी खायँ सब हो घर घर आनन्द ॥२०३५॥
'मुट्ठी में आजायँ सब दुनिया के बाजार,
राष्ट्र राष्ट्र में हो नहीं ऐसी लूटामार ॥ २०३६ ॥
सागर के पथ हों खुले सब के लिये समान।
सब देशों के जगत में घूम सकें जलयान ॥ २०३७ ॥
दुनिया की खाली जगह आये सब के काम।
सभी जाति के जन वहा बसें करें विश्राम ॥२०३८॥
ये ही सच्चे यत्न हैं करते युद्धनिरोध।
राष्ट्र राष्ट्र के बीच का इनसे हटे विरोध ॥ २०३९ ॥
ये सब कारण युद्ध के अगर न होते दूर।
तब तो कहना चाहिये मानव सब से क्रूर ॥ २०४० ॥
जब तक हैं साम्राज्य या पूंजीवाद प्रचंड।
तब तक ही ये युद्ध हैं इन पापों के दंड ॥ २०४१ ॥
राष्ट्रमोह में भूलकर लेकर पूंजीवाद।
साम्राज्यों के ही लिये हुआ जगत बर्बाद ॥ २०४२ ॥
मिटजायें साम्राज्य ये रहे न पूंजीवाद।
महायुद्ध का नाम भी रहे न जग को याद ॥ २०४३ ॥
पीढ़ी पीढ़ी में न हों महा भयंकर युद्ध।
भूल चूक से भी न हो महाकाल अब क्रुद्ध ॥ २०४४ ॥
सभी राष्ट्र हों प्रान्त सम हो सब में सहयोग।
मिलजुलकर शासन करें रहे न सेना रोग ॥ २०४५ ॥

युद्ध का न कानून हो बलजोरी मिटजाय ।
सुखसाता का राज्य ही चारों ओर दिखाय ॥ २०४६ ॥
युद्ध-कारणों पर करो लड़ से खूब प्रहार ।
परम अहिंसा नीति का घर घर जय जयकार ॥२०४७॥
युद्ध-कारणों पर अगर करते नहीं प्रहार ।
फिर हिंसा निंदा करो तो यह मायाचार ॥ २०४८ ॥
युद्ध-मूल रहने न दो छोड़ो मन का पाप ।
युद्ध रुद्ध होजायँगे तब अपने ही आप ॥ २०४९ ॥
युद्ध-निरोधक नीति का करता है जो भंग ।
अपराधी वह युद्ध का छिड़वाता है जंग ॥ २०५० ॥
यदि होता है युद्ध तो वही युद्ध का बाप ।
हिंसा का या युद्ध का उसके ही सिर पाप ॥ २०५१ ॥
युद्ध-जनक पापी न हों शक्तिमन्त हो न्याय ।
मानवता की प्राप्ति का पहिला यही उपाय ॥ २०५२ ॥
कानूनी है युद्ध जब लड़ती है सरकार ।
तब मानवता क्या रहे भले रहे आकार ॥ २०५३ ॥
जब तक जग में युद्ध हैं जब तक मारामार ।
तब तक कैसे कह सकें बना सभ्य संसार ॥ २०५४ ॥
युद्धों के कारण मिटें हो बप न्यय विचार ।
युद्ध अवैधानिक बने बने सभ्य संसार ॥ २०५५ ॥
क्या दुनिया में दुःख कम क्या दुःखों की चाह ?
अगर नहीं, तो क्यों चलें हम युद्धों की राह ॥ २०५६ ॥
चुभता है क्या शान्ति सुख चुभता है क्या प्यार ।
अगर नहीं तो क्यों करें लड़ लड़ मारामार ॥ २०५७ ॥
पड़े विधायक कार्य हैं यहां हजार हजार ।

उन्हें तो न पूरे करें लड़ते किन्तु गमार ॥ २०५८ ॥
मानवता लज्जित हुई किससे करे पुकार ।
मानव का आकार है फिर भी मारामार ॥ २०५९ ॥

गीत–७७

मचाई क्यों यह मारामार ।
मानव होकर लजा रहे क्यों मानव का आकार ।
मचाई क्यों यह मारामार ॥ २०६० ॥
सींग नहीं पाये मानव ने और न हिंसक दन्त ।
हिंसक नख भी मिले नहीं तब क्यों है युद्ध अनन्त ॥
प्राणी का आदर्श बना यह लेकर मन में प्यार ।
मचाई क्यों यह मारामार ॥ २०६१ ॥
मानव करे न्याय से निर्णय यही प्रकृति की चाह ।
युद्ध बिना सब काम चलावे चले शान्ति की राह ॥
इसीलिये मानव शरीर में शान्ति बनी साकार ।
मचाई क्यों यह मारामार ॥ २०६२ ॥
मानव है सन्तान ज्ञान की मनु कहलाता ज्ञान ।
फिर क्यों मन में भरे हुए हैं युद्धों के अरमान ॥
मानवता के लिये चाहिये कृतिमय ज्ञान विचार ।
मचाई क्यों यह मारामार ॥ २०६३ ॥
हो युद्धों का अन्त कि जिनमें है पशुता का राज ।
करें न्याय से निर्णय सब जन जग हो सत्यसमाज ॥
विजयी हो मानवता जग में बने नया संसार ।
मचाई क्यों यह मारामार ॥ २०६४ ॥

इक्कीसवां अध्याय

सुखसाधन वृद्धि

छोड़ो सब संहार ये करो खूब निर्माण ।
मानव के आकार में डालो दैवी प्राण ॥ २०६५ ॥
सुखसाधन इतना करो जो घर घर न समाय ।
न्याय प्रेममय विभव से स्वर्ग यहीं आजाय ॥ २०६६ ॥
घर घर में वैभव भरे घट घट संयम ज्ञान ।
इसी जन्म में बन सके मानव देव-समान ॥ २०६७ ॥
विभव नहीं संयम नहीं और न सम्यग्ज्ञान ।
कैसा भी आकार हो वे प्राणी हैवान ॥ २०६८ ॥
वैभव से घर हो भरा किन्तु न संयम ज्ञान ।
जग कुछ भी समझे उन्हें पर वे हैं शैतान ॥ २०६९ ॥
स्वल्प विभव के साथ में जिनमें संयम ज्ञान ।
कैसा भी आकार हो पर वे हैं इन्सान ॥ २०७० ॥
वैभव से घर है भरा मन में संयम ज्ञान ।
मानव के आकार में वे हैं देव समान ॥ २०७१ ॥
यही दिव्यता ज्ञेय है यही दिव्यता ध्येय ।
यही दिव्यता गेय है यही परम आदेय ॥ २०७२ ॥
वैभव हम को पच सके रक्खें सब का ध्यान ।
इसीलिये ही चाहिये मन में संयम ज्ञान ॥ २०७३ ॥
अगर न संयम ज्ञान हो तो वैभव है पाप ।
बिना बुलाये आयगा दोजख अपने आप ॥ २०७४ ॥
जग में यदि वैभव न हो फल न सकें अरमान ।
भीतर ही भीतर मिटे मन मन का इन्सान ॥ २०७५ ॥

बुद्धि निकम्मी सी बने पा न सके विज्ञान ।
छूट जाय कुछ समय में संयम का भी ध्यान ॥२०७६॥
छोटो मत न बको कभी खूब लगाओ जोर ।
संयम ज्ञान समृद्धि ले बढ़ो स्वर्ग की ओर ॥ २०७७ ॥
करो यंत्र से तंत्र से उत्पादन भरपूर ।
वितरण भी ऐसा करो रहे गरीबी दूर ॥ २०७८ ॥
घर घर में धनधान्य हो खायें सब भरपेट ।
एक दूसरे का कभी करें नहीं आखेट ॥ २०७९ ॥
पानी का रोना न हो जाना पड़े न दूर ।
हो सब कामों के लिये घर घर जल भरपूर ॥ २०८० ॥
वर्षा गरमी ठंड में ऋतु ऋतु के अनुकूल ।
पहिने ओढ़ें लोग सब सुन्दर स्वच्छ दुकूल ॥ २०८१ ॥
हवादार ऊंचे बड़े पक्के स्वच्छ मकान ।
हर कुटुम्ब के पास हों सब हों महिमावान ॥ २०८२ ॥
घर घर हो विद्याभवन पुस्तक के भंडार ।
वृत्तपत्र घर घर करें समाचार–विस्तार ॥ २०८३ ॥
बर्तन भाढे पूर्ण- हों फर्नीचर भरपूर ।
घर घर टेलीफोन हो रहे न कोई दूर ॥ २०८४ ॥
घर घर में हो रेडियो दे सब को आनन्द ।
ज्ञान मिले मन तुष्ट हो दूर हटें दुखद्वंद ॥ २०८५ ॥
बिजली का उद्योत हो बिजली से सब काम ।
बिजली से झकमक करें भीतर बाहर धाम ॥ २०८६ ॥
संस्थाओं से हों भरे नगर मुहल्ला ग्राम ।
शिक्षण स्वास्थ्य विनोद के हों सेवामय काम ॥ २०८७ ॥
पक्की सड़कें हों बनी गाव गाव के बीच ।

ग्राम नगर में सड़कमें दे न दिखाई कीच ॥ २०८८ ॥
गांव गांव के बीच में हो बिजली की ट्राम ।
आने जाने का कभी रुके न कोई काम ॥ २०८९ ॥
गांव रहें अथवा नगर दोनों एक समान ।
चमक दमक दोनों जगह दोनों महिमावान ॥ २०९० ॥
दोनों में हो स्वच्छता दोनों में हो प्राण ।
सुविधाएँ दोनों जगह सिर्फ भिन्न परिमाण ॥ २०९१ ॥
हो सारे संसार में अर्थकाम भरपूर ।
धर्म हृदय में हो भरा मोक्ष रहे क्या दूर ॥ २०९२ ॥
सुख साधन की वृद्धि हो घर घर बरसें रत्न ।
मानव देव समान हो इसीलिये हो यत्न ॥ २०९३ ॥

गीत ७८

बनायें वैभवमय संसार ।
जिसमें घर घर भरा हुआ हो लक्ष्मी का भंडार ।
बनायें वैभवमय संसार ॥ २०९४ ॥
दीन दुखी जग में न कहीं हों हों न कहीं कंगाल ।
घर घर में सम्पत्ति भरी हो हों सब मालामाल ॥
ग्राम नगर में तरह तरह से लक्ष्मी हो साकार ।
बनायें वैभवमय संसार ॥ २०९५ ॥
यत्न करें सब उत्पादन में लिये कला विज्ञान ।
मानव देव समान बनें सब जग हो स्वर्ग समान ॥
धर्म मुक्ति के साथ साथ हो अर्थकाम विस्तार ।
बनायें वैभवमय संसार ॥ २०९६ ॥

———

बाईसवां अध्याय

मानवभाषा

जग की बढ़े समृद्धि तब बने सुखी संसार ।
जब सब में सहयोग हो खुलें हृदय के द्वार ॥ २०९७ ॥

समझें सबकी बात सब रक्खें नहीं कुटेक ।
सरल और नियमित बने सबकी भाषा एक ॥२०९८॥

सब जग में होने लगा निशदिन यातायात ।
पर न एक भाषा हुई बड़ी शर्म की बात ॥ २०९९ ॥

कोस न सौ पूरे हुए पूरी हुई न रात ।
भाषा कुछ की कुछ हुई वचन हुए अज्ञात ॥ २१०० ॥

आना जाना सब जगह सभी जगह व्यापार ।
पर मानव भाषा बिना गूंगा सा संसार ॥ २१०१ ॥

भाषाएँ हैं सैकड़ों सब हैं चित्र विचित्र ।
बात न जिनमें कर सकें अन्य देशके मित्र ॥ २१०२ ॥

लिपियाँ भी हैं दर्जनों सब हैं चित्र विचित्र ।
घंटों जिनको देखकर समझ न पाते मित्र ॥ २१०३ ॥

भाषाएँ बेकार हैं लिपियाँ भी बेकार ।
परम्परा के मोह की करते सब बेगार ॥ २१०४ ॥

आकृतियाँ नियमित नहीं ऊबड़ खाबड़ शकल ।
फिर भी उनमें हैं फसा यह मानव बेअक्ल ॥ २१०५ ॥

कहीं कहीं ध्वनि एक है अक्षर किन्तु अनेक ।
ध्वनियाँ कहीं अनेक हैं पर अक्षर है एक ॥ २१०६ ॥

उच्चारण पूरे नहीं है न तरीका खास ।
शुद्धपाठ है अतिकठिन पद पद पर है त्रास ॥ २१०७ ॥

किसी किसी लिपिके लिये प्रेस तार बेकार ।

फिर भी मानव ढोरहा उन लिपियों का भार ॥२१०८॥
सच्ची लिपिका सीखना दिन दो दिन का काम ।
पर मानव उनके लिये देता वर्ष तमाम ॥ २१०६ ॥
जो लिपि उसको मिलगई ढोता उसका भार ।
परम्परा के मोह में मानव बना गमार ॥ २११० ॥
सीखें सब निर्दोष लिपि छोड़ें अपनी टेक ।
वैज्ञानिक लिपि चाहिये दुनिया भर की एक ॥२१११॥
वैज्ञानिक भाषा रहे बोले सब संसार ।
एक वर्ष में सीखलें जिसका सब व्यवहार ॥ २११२ ॥
उस भाषा का व्याकरण हो दिनभर में याद ।
नियम वहां निश्चित रहें हों न कहीं अपवाद ॥२११३॥
एक शब्द के हो नहीं जिसमें दो दो अर्थ ।
उच्चारण में हो सरल हो न परिश्रम व्यर्थ ॥ २११४ ॥
भाषाएँ जगमें बहुत कोई शुद्ध न आज ।
मानव भाषा का जिसे हम पहिनायें ताज ॥ २११५ ॥
लिंग वहां नियमित नहीं नियमित नहीं विभक्ति ।
शब्द अर्थ नियमित नहीं कैसे हो अनुरक्ति ॥ २११६ ॥
उनकी वचन विभक्तियाँ अक्षर-क्रम से हीन ।
शब्दोच्चारण भी कठिन अर्थ प्रकरणाधीन ॥ २११७ ॥
मानव वैज्ञानिक हुआ करता आविष्कार ।
भाषा लिपि की बात में पर वह निपट गमार ॥२११८॥
जीवन की सब वस्तु का करता वह निर्माण ।
पर भाषा निर्माण में निकले उसके प्राण ॥ २११६ ॥

गीत-७९

मानव क्यों तू बना गमार ।

कर जग भर के लिये एक भाषा का आविष्कार।
मानव क्यों तू बना गमार ॥ २१२० ॥
गुफा छोड़कर महल बनाये।
वल्कल छोड़ वस्त्र पहिनाये ॥
फिर ऊबड़ खाबड़ भाषा का उठा रहा क्यों भार।
मानव क्यों तू बना गमार ॥ २१२१ ॥
भाषा लिपि न जन्म से पाई।
मानव ने थी कभी बनाई।
युग युग में बदला पर जगकी मिटी नहीं बेगार।
मानव क्यों तू बना गमार ॥ २१२२ ॥
अब यह वैज्ञानिक युग आया।
जगत एक बाजार बनाया ॥
सब से मिलना जुलना है अब कर भाषा–विस्तार।
मानव क्यों तू बना गमार ॥ २१२३ ॥
मानव मानव सब हमजोली।
सरल शुद्ध नियमित हो बोली ॥
मानवभाषा एक बने फिर एक बने संसार।
मानव क्यों तू बना गमार ॥ २१२४ ॥

गीत–८०

मानव, मानवभाषा बोल।
भाषा का घमंड मत कर तू सब का हिया टटोल।
मानव मानवभाषा बोल ॥ २१२५ ॥
भाषाओं का बोझ उठाये।
कहां कहां तू आये जाये ॥
एक सरल मानवभाषा से दुनियाभर में डोल।
मानव, मानवभाषा बोल ॥ २१२६ ॥
दुनियाभर में आना जाना।
सब को मनकी बात बताना ॥

मानवभाषा से भावों का मन मनमें रस घोल।
मानव, मानव भाषा बोल॥ २१२७॥
ऊबड़खाबड़ ये भाषाएँ।
कैसे जगको एक बनायें॥
सरल शुद्ध नियमित भाषा से घट घट के पट खोल।
मानव मानव भाषा बोल॥ २१२८॥

गीत-८१

मानवभाषा एक बनाले।
सारी दुनिया को अपनाले॥
कैसा है तू मानव प्राणी।
एक नहीं क्यों तेरी वाणी॥
कंठ एक, स्वर एक, एक भाषा में गाना गाले।
मानवभाषा एक बनाले॥ २१२९॥
अगर एक भाषा बनजाये।
एक जाति मानव कहलाये॥
मानव राष्ट्र बनायें मिलकर गोरे पीले काले॥
मानवभाषा एक बनाले॥ २१३०॥
द्वीप द्वीप में देश देश में।
प्रांत प्रांत में पड़ न क्लेश में॥
जनजन के मन मन में जाकर अन्तर्ज्योति जगाले।
मानवभाषा एक बनाले॥ २१३१॥

गीत ८२

कैसी माया में भरमाया।
टुकड़े टुकड़े जगत बनाया॥
जन्म समय मानव के शिशुका गला एकसा होता।
एक सरीखा स्वर होता है एक सरीखा रोता॥
विधि ने बोली एक बनाई एक बनाई काया।
कैसी माया मे भरमाया॥ २१३२॥

सब भाषाओं में स्वर व्यञ्जन एक सरीखे आये ।
आगे पीछे जोड़ तोड़कर नाना शब्द बनाये ॥
संकेतों के भेदभाव ने भाषाभेद कराया ।
कैसी माया में भरमाया ॥ २१३३ ॥

जब मानव थे जुदे जुदे तब जुदी जुदी थी बोली ।
अब सब का बाजार एक है एक जगत की टोली ॥
पर अब तक मानव ने भाषा-भेद नहीं बिसराया ।
कैसी माया में भरमाया ॥ २१३४ ॥

एक सरीखे स्वर व्यञ्जन सब रोना हसना गाना ।
संकेतों में परिवर्तन कर बोली एक बनाना ॥
मानव भाषा एक बने तब मिटे भेद की माया ।
कैसी माया में भरमाया ॥ २१३५ ॥

पद्मावती

मानव मानव सब एक जाति बोली भी एक बनाना है ।
ऊबड़ खाबड़ ये भाषाएँ इनमें अब सिर न पचाना है ॥
अब शुद्ध सरल नियमित भाषा सारे जगमें फैलाना है
मन मनकी माया दूर हटे भाषाका ब्रह्म जगाना है २१३६



तेईसवां अध्याय

मानवराष्ट्र

भाषा सब की एक हो एक सभी का देश ।
राष्ट्र राष्ट्र के बीच में रहे न कोई क्लेश ॥ २१३७ ॥
सब देशों का देश है पृथ्वी मानव देश ।
आना जाना है सरल अन्तर रहा न लेश ॥ २१३८ ॥
आने जाने का रहा जब कि भयंकर क्लेश ।
भूतकाल में थे यहां नगर नगर के देश ॥ २१३९ ॥
आना जाना बढ़ चला बढ़ा देश-परिमाण ।
हुआ अधिक सहयोग तब हुआ अधिक कल्याण ॥२१४०॥
गिरिसागर मरु नद नदी रोक रहे थे चाल ।
इसीलिये ये राष्ट्र की सीमा थे उस काल ॥ २१४१ ॥
अब सागर सरवर हुए गिरि बच्चों के खेल ।
नद नाली से बनगये रुक न सका अब मेल ॥ २१४२ ॥
मिला चुके कब के हमें मोटर रेल जहाज ।
गिरि सागर के पार ये करें घड़ी में आज ॥ २१४३ ॥
नभयानों में बैठकर होता गगन-विहार ।
नभयानों ने कर दिया मुट्ठी भर संसार ॥ २१४४ ॥
सीमाएँ अब राष्ट्र की कैसे आज बनायें ।
नभ में उड़ते लोग अब कैसे रोके जायें ॥ २१४५ ॥
तार रेडियो का हुआ ऐसा यातायात ।
हुई हजारों कोसकी घर जैसी ही बात ॥ २१४६ ॥
एक राष्ट्र के तुल्य है अब सारा संसार ।
स्वार्थ सभी के एक हैं मिला जुला बाजार ॥ २१४७ ॥

मानव राष्ट्र बनें यहां सब राष्ट्रों का एक ।
राष्ट्र राष्ट्र के भेद की रहे न मन में टेक ॥ २१४८ ॥
राष्ट्र भेद मिटजाय सब जागे प्रेम विवेक ।
मानव राष्ट्र बने यहां देश बने सब एक ॥ २१४९ ॥
सब जगके मालिक बनें रहें न कहीं गुलाम ।
रहे न जग में राष्ट्रमद सारा जग हो धाम ॥ २१५० ॥
अफ्रीका आष्ट्रेलिया अमरीका यूरोप ।
सकल एशिया एक हो भेदभाव का लोप ॥ २१५१ ॥
पृथ्वी मानव राष्ट्र हो महाद्वीप हों प्रान्त ।
राष्ट्र जिले तहसील हों मिटजायें सीमान्त ॥ २१५२ ॥
सब ही सब जग में बसें इच्छा के अनुसार ।
मानव मानव एक हो करें परस्पर प्यार ॥ २१५३ ॥
पक्षपात निजभूमिका छोड़े सब संसार ।
मानव के मनमें रहे सभी जगह से प्यार ॥ २१५४ ॥
एक बने सब सभ्यता एक बने घर द्वार ।
एक नागरिकता बने एक बने संसार ॥ २१५५ ॥
अर्थनीति हो एक ही एक बने बाजार ।
जग का सिक्का एक हो मिला जुला व्यापार ॥ २१५६ ॥
भिन्न भिन्न जलवायु हो भिन्न भिन्न भूखंड ।
भले रहे कुछ भिन्नता पर उसका न घमंड ॥ २१५७ ॥
सबके गुण देखें सभी करें सभी का भोग ।
पक्षपात को छोड़कर करें उचित उपयोग ॥ २१५८ ॥
भिन्न भिन्न रस रूप से करे न कोई द्वंद ।
भिन्न भिन्न वेषादि का ले पूरा आनंद ॥ २१५९ ॥
भिन्न भिन्न जलवायु से मानव राष्ट्र न भिन्न ।

प्रकृति भिन्नता क्या करे जब न हृदय विच्छिन्न ॥ २१६० ॥
सब का मानव राष्ट्र हो मिटें राष्ट्र के द्वंद ।
युद्ध बन्द होजायँ सब हो घर घर आनन्द ॥ २१६१ ॥
जनता के सिर से उठे सेनाओं का भार ।
लगे विधायक कार्य में दुनियां की सरकार ॥ २१६२ ॥
करती हैं जो शक्तियाँ यहा परस्पर नाश ।
बनें विधायक वे सभी हो शैतान निराश ॥ २१६३ ॥
मानव की सब शक्तियाँ तब रचडालें स्वर्ग ।
दुःख न ढूंढे भी मिले मुट्ठी में अपवर्ग ॥ २१६४ ॥
मानव राष्ट्र बने यहां बने एक संसार ।
घर घर में सुख शान्ति हो घट घट छलके प्यार ॥ २१६५ ॥

गीत—८३

अब हम मानव राष्ट्र बनायें ।
राष्ट्र राष्ट्र का मोह छोड़कर विश्वप्रेम फैलायें ।
अब हम मानव राष्ट्र बनायें ॥ २१६६ ॥
रह न सके साम्राज्यवाद अब पूंजीवाद हटायें ।
एक नागरिकता हो सब की सबमें ममता लायें ॥
अब हम मानव राष्ट्र बनायें । २१६७ ॥
रंग राष्ट्र कुल धर्म सभ्यता सब के भेद भुलायें ।
प्रीतिपुरी या सत्यनगर के सब नागर कहलायें ॥
अब हम मानव राष्ट्र बनायें ॥ २१६८ ॥
'मैं मैं' 'तू तू' दूर हटायें तू मैं मैं तू गायें ।
जहां कहीं जायें दुनिया में अपनासा घर पायें ॥
अब हम मानव राष्ट्र बनायें ॥ २१६९ ॥
मानवता मा की गोदी में सब राष्ट्रों को लायें ।
मां के चरणों पर राष्ट्रों के हँस हँस सुमन चढ़ायें ॥
अब हम मानव राष्ट्र बनायें ॥ २१७० ॥

चौबीसवां अध्याय

विश्वकुटुम्बिता

एक राष्ट्र मानव बने एक बने सरकार ।
स्वार्थों का झगड़ा न हो करें परस्पर प्यार ॥ २१७१ ॥

सारा सुख दुख बांटकर मिलें परस्पर लोग ।
विश्वकुटुम्बी जग बने हो पूरा सहयोग ॥ २१७२ ॥

है सब के सहयोग में सब का ही उपकार ।
सुख बढ़ता सहयोग से सब का वर्गाकार ॥ २१७३ ॥

कुल कुटुम्ब की जाति का पक्षपात है व्यर्थ ।
पक्षपात रहता जहां होता वहां अनर्थ ॥ २१७४ ॥

पक्षपात रहता जहां वहां न रहता न्याय ।
दुर्गुण भी पूजित बनें गुण भी धक्का खाय ॥ २१७५ ॥

पक्षपात यदि छोड़ दें तो पायें गुणवान ।
अपरिचितों से भी मिलें प्यार और ईमान ॥ २१७६ ॥

सेवा हो ईमान हो और हृदय में प्यार ।
कोई भी मानव रहे समझो रिश्तेदार ॥ २१७७ ॥

यहां वहां हों सब जगह जग में रिश्तेदार ।
सारी दुनिया एक हो सब में छलके प्यार ॥ २१७८ ॥

एक जगह संकट पड़े जग हो चिन्तामग्न ।
संकट हरने के लिये सब सेवा में लग्न ॥ २१७९ ॥

कोई भी समझे नहीं अपने को असहाय ।
सब को सब का बल रहे सब संकट टलजाय ॥२१८०॥

घर का कोई भी मरे पर घर हो न अनाथ ।
सारे जग के लोग तब दें सुख दुख में साथ ॥२१८१॥

अगर पड़े दुर्भिक्ष तो सब पूरा करजायें ।
अगर न पूरा होसके तो सब कम कम खायँ ॥२१८२॥
जनसंख्या अनुसार यदि अन्न न हो उत्पन्न ।
सब सन्तति-नियमन करें फिर भी रहें प्रसन्न ॥२१८३॥
अपने जातिकुटुम्ब में हो कम क्यों सन्तान ।
विश्व कुटुम्बी के लिये इसका तनिक न ध्यान ॥२१८४॥
जहां कहीं सन्तान हो अपनी हो सन्तान ।
विश्वकुटुम्बी जग हुआ निजपर का क्या ध्यान ॥२१८५॥
व्यक्ति वर्ग के बीच में रहा न कोई वर्ग ।
भूतल पर दिखने लगा विकसित होकर स्वर्ग ॥२१८६॥
साम्यभाव लाकर बना सब जग चिन्ताहीन ।
बने सुखी श्रीमान सब रहा न कोई दीन ॥ २१८७ ॥
जिससे जितना बनसके वह उतना देजाय ।
जिसको जितना चाहिये वह उतना लेजाय ॥ २१८८ ॥
पक्षपात आलस्य का रहा न जगमें नाम ।
श्रमपूर्वक निष्पक्ष सब करें खुशी से काम ॥ २१८९ ॥
हँस हँस कर करन लगे सब जग श्रम की होड़ ।
गई गरीबी रूठकर इस दुनिया को छोड़ ॥ २१९० ॥
हँस हँस कर होने लगे सार्थक श्रम के काम ।
समझा सब ने काम को आवश्यक व्यायाम ॥ २१९१ ॥
विश्वकुटुम्बी जग हुआ दूर हुए दुख द्वंद ।
लेने से भी बढ़गया देने का आनन्द ॥ २१९२ ॥
'सब मेरा' के राज्य में जग है नरक समान ।
'सब तेरा' के राज्य में जग है स्वर्ग समान ॥ २१९३ ॥
आना खाली हाथ है जाना खाली हाथ ।

'मैं मेरा' फिर किस लियेरहो सभी जन साथ ॥ २१९४ ॥
यदि आया कुछ हाथ में करो जगत को दान।
जग का धन जग को दिया इसमें क्या अभिमान ॥२१९५॥
अगर भाग्य से होगई गुण विशेष की प्राप्ति।
तो अपने ही स्वार्थ में उसकी हो न समाप्ति ॥२१९६॥
जग को उसका दान दो करो नहीं अभिमान।
बन जाओगे तुम स्वयं उसमें गौरववान ॥ २१९७ ॥
गुणियों का आदर करो लो उनसे आनन्द।
ईर्ष्या को आने न दो हृदय रहे अद्वंद ॥ २१९८ ॥
हो न दीनता मद न हो रहे विनय सन्मान।
एक कुटुम्ब समान हो गुण का दानादान ॥ २१९९ ॥
जब न परायापन रहा तब क्या ईर्ष्या द्वेष।
व्यक्ति समष्टि अभेद में ईर्ष्या रहे न शेष ॥ २२०० ॥
विश्वकुटुम्बी जग बने हों सारे दुख चूर।
घर घर में दिखने लगे सुख वैभव भरपूर ॥ २२०१ ॥

गीत–८४

विश्वकुटुम्बी हो जग सारा।
मिलजुलकर सब सुख-दुख बाटे सारा जग हो सबको प्यारा।
विश्वकुटुम्बी हो जग सारा ॥ २२०२ ॥
स्वार्थों का संघर्ष हटायें।
सब सब के पूरक बनजायें ॥
बनजायें निश्चित सुखी सब जन जनमें हो भाईचारा।
विश्वकुटुम्बी हो जग सारा ॥ २२०३ ॥
हम भी आयें काम तुम्हारे।
तुम भी आओ काम हमारे ॥
मिलजुल राह करें सब पूरी सब को सब का रहे सहारा।

विश्वकुटुम्बी हो जग सारा ॥ २२०४ ॥
आदम से आदमी कहायें ।
या मनु से मानव कहलाये ॥
सुख दुख बांट बाटकर भोगें सबका कुनवा एक हमारा ।
विश्वकुटुम्बी हो जग सारा ॥ २२०५ ॥

गीत–८५

दुनिया रही न न्यारी न्यारी ।
सब गृहिवेषी साधु बने हैं दुनिया के नरनारी ।
दुनिया रही न न्यारी न्यारी ॥ २२०६ ॥
पक्षपात का काम नहीं है ।
मोह द्वेष का नाम नहीं है ॥
विश्वप्रेम या वीतरागता लगती सब को प्यारी ।
दुनिया रही न न्यारी न्यारी ॥ २२०७ ॥
मानव मानव हँस हँस मिलते ।
खिलते हृदय वदन भी खिलते ॥
सहज हुई मानव मानव की घर घर रिश्तेदारी ॥
दुनिया रही न न्यारी न्यारी ॥ २२०८ ॥
जन जन में है भाईचारा ।
स्वार्थ नहीं अब न्यारा न्यारा ॥
सब जन विश्वकुटुम्बी बनकर बने देव–अवतारी ।
दुनिया रही न न्यारी न्यारी ॥ २२०९ ॥

———

पच्चीसवां अध्याय

कर्मयोग

सुख साधन जग में बढ़ें मन भी हो निष्पाप ।
आये सतयुग स्वर्ग या जग में अपनेआप ॥ २२१० ॥
ऐसे जग हो योग हो हो बाधा का नाश ।
कर्म और आनन्दमय जीवन हो न निराश ॥ २२११ ॥
करें सदा कर्तव्य हम हो न हृदय में द्वंद ।
बाहर कुछ भी हो मगर मन में हो आनन्द ॥ २२१२ ॥
रक्खें पूर्णानंद की अपने मन में चाह ।
कर्मशील बनकर चलें कर्मयोग की राह ॥ २२१३ ॥
सब योगों में श्रेष्ठ है कर्मयोग सुखधाम ।
निस्पृह बन करते रहो जनसेवा के काम ॥ २२१४ ॥

गीत ८६

हो कर्मयोग का राज ।
योग भोग के मोक्ष स्वर्ग का यहीं मिले सब साज ।
हो कर्मयोग का राज ॥ २२१५ ॥
भक्ति सांख्य सारस्वतयोगी जीवन के अपवाद ।
यदि हो इनका राज जगत में तो जग हो बर्बाद ॥
उजड़ जायँ इनसे घर सारे उजड़े सकल समाज ।
हो कर्मयोग का राज ॥ २२१६ ॥
कर्मयोगधारी हों दम्पति घर घर में हो स्वर्ग ।
हँस हँस जीवन खेल खेलकर पाजायँ अपवर्ग ।
उत्पादक श्रम के बदले में लें गृह वस्त्र अनाज ।
हो कर्मयोग का राज ॥ २२१७ ॥
यह जग हो आनन्द कन्दमय हो सारे सत्कर्म ।
हों चारों जीवार्थ समन्वित अर्थ काम शिव धर्म ।

घर घर में हो घट घट में हो योगों का सिरताज।
हो कर्मयोग का राज ॥ २२१८ ॥

दोहा

कर्मयोग की प्राप्ति से मिलती जीवन दृष्टि।
धर्म अर्थ शिव काम मय होजाती है सृष्टि ॥ २२१९ ॥
कृषि आदिक व्यापार में रहता जीवन शुद्ध।
मिलते हैं दम्पति बने घर घर में जिन बुद्ध ॥ २२२० ॥
कर्मयोग में भक्ति भी रहती है साकार।
सत्यभक्त योगी बना भजता है संसार ॥ २२२१ ॥
भज का सेवा अर्थ है जगत सत्य में लीन।
सत्यभक्त सेवक बना करता जगत नवीन ॥ २२२२ ॥
गाल बजाने से नहीं हो जाती है भक्ति।
गाल बजाना तब सफल जब सेवा-अनुरक्ति ॥ २२२३ ॥

गीत ८७

योगी भजले तू संसार।
जनसेवा ही सत्यभक्ति है कर्मयोग आधार।
योगी भजले तू संसार ॥ २२२४ ॥
वैर छोड़कर न्याय पकड़ले मोह छोड़ रख प्यार।
अकर्मण्यता दूर हटाकर ले सेवा का भार।
योगी भजले तू संसार ॥ २२२५ ॥
पक्षपात को छोड़ समझ तू सब है रिश्तेदार।
पाजायेगा विश्वप्रेम से सत्येश्वर का द्वार।
योगी भजले तू संसार ॥ २२२६ ॥

दोहा

सत्यभक्त रहने लगा सत्येश्वर के द्वार।
जग की सेवा कर बना प्रभु का खिदमतगार ॥२२२७॥

सत्यभक्त सेवक बना सेवा मय्मी भक्ति ।
सेवा ही सत्येश के चरणों की अनुरक्ति ॥ २२२८ ॥
सत्यभक्त सत्येश के चरणों में हो लीन ।
कर्मयोगधारी बना जग होगया नवीन ॥ २२२९ ॥
सत्येश्वर भगवान का सत्यभक्त है दास ।
संकट आया उड़गया सत्येश्वर के पास ॥ २२३० ॥
उसके मनमें बनगया सत्येश्वर का धाम ।
जब जी चाहा चल दिया किया गृह विश्राम ॥ २२३१ ॥
बाहर दिखता काम है पर भीतर विश्राम ।
सत्यभक्ति का मिलगया सब से बड़ा इनाम ॥ २२३२ ॥
सत्यभक्त योगी बना सत्येश्वर का दास ।
यश अपयश जो कुछ मिला गया सत्य के पास ॥ २२३३ ॥
सत्यभक्त योगी बना सेवा में ही मस्त ।
असफलता भी कर सकी उसका हृदय न ग्रस्त ॥ २२३४ ॥
सत्यभक्त नटरूप है सूत्रधार सत्येश ।
सारे जीवन खेल हैं खेलों में क्या क्लेश ॥ २२३५ ॥

गीत—८८

योगी खेल जगत का खेल ।
मन में रह अलमस्त जगत के सारे सुख दुख झेल ।
योगी खेल जगत के खेल ॥ २२३६ ॥
इस नाटक की कथावस्तु हो सुखान्त या दुखान्त ।
कलाकार तू कला दिखादे फलमें हो न अशान्त ॥
क्षणभर ही हँसना रोना है क्षणभर ठेलमठेल ।
योगी खेल जगत के खेल ॥ २२३७ ॥
झूठ समझ सब रोना गाना धन वैभव अधिकार ।
सूत्रधार की है सब माया नाटकमय संसार ॥

जीवन का अभिनय होने दे रस रंगो का मेल।
योगी खेल जगत के खेल ॥ २२३८ ॥

गीत–८९

नटिया बनकर आजा। योगी नटिया बनकर आजा।
हास्य वीर श्रृंगार करुण रस जीवन में दिखलाजा॥
योगी, नटिया बनकर आजा ॥ २२३९ ॥
कण कण में है नाटकशाला।
कहां भागता लेकर माला।
जन जन के मनमन में जाकर जग के बीच समाजा।
योगी नटिया बनकर आजा ॥ २२४० ॥
यह जीवन है खेल खेलना।
बड़ी कला है चोट झेलना॥
डर कर भग मत रंगमंच से नटनागर कहलाजा।
योगी नटिया बनकर आजा ॥ २२४१ ॥

दोहा

दुनिया से निर्लिप्त रह कर दुनिया के काम।
जलमें कमल समान हो यह जग तेरा धाम ॥ २२४२ ॥
सर्वभूत हित कार्य जो रख तू उसका ध्यान।
छोड़ फलाफल वासना बन निर्लिप्त महान ॥ २२४३ ॥
सारा जग का स्वार्थ जो-वह तेरा भी स्वार्थ।
सर्वभूतहित कार्य जो वही समझ परमार्थ ॥ २२४४ ॥
आध्यात्मिकता है यही सच्चा यही विराग।
जग के अर्थों के लिये निज अर्थों का त्याग ॥ २२४५ ॥
जग में हैं बीमारियाँ पाप भरे भरपूर।
कर्मयोग-की राह चल करदे इनको दूर ॥ २२४६ ॥

गीत–९०

योगी जग का पाप मिटाजा ।
घट घट में यह आग लगी है घट की आग बुझाजा ।
योगी जग की आग बुझाजा ॥ २२४७ ॥
अंधकार में भटक रहा जग जग को पथ दिखलाजा ।
घर घर का मानव सोया है घर घर अलख जगाजा ॥
योगी जग की आग बुझाजा ॥ २२४८ ॥
मानव दानव बना हुआ है तू मानवता लाजा ।
सत्यभक्त बन सत्येश्वर का शुभ संदेश सुनाजा ।
योगी जग की आग बुझाजा ॥ २२४९ ॥

दोहा

जितना जगमें पाप है जितना अत्याचार ।
उतना ही कर्तव्य का तेरे सिर पर भार ॥ २२५० ॥
जीवन भर कर्तव्य कर कर जग का कल्याण ।
आलस को आने न दे कर्मठता है प्राण ॥ २२५१ ॥
असफलता को देखकर मत बन कभी निराश ।
जीवन रखकर बन नहीं चलती फिरती लाश ॥ २२५२ ॥
तू अपना कर्तव्य कर रख जगहित पर ध्यान ।
दुनिया समझे या नहीं समझ रहा भगवान ॥ २२५३ ॥
अगर नहीं कर्तव्य में लगता तेरा ध्यान ।
तो मन में घुस जायगा चुपके से शैतान ॥ २२५४ ॥
मन तन सदा सचेष्ट हैं रह न सकें बेकार ।
पुण्य नहीं तो पाप में पड़ने को तैयार ॥ २२५५ ॥
ये मन तन वश में रहें सुखमय रहे समाज ।
कर्मयोग की नीति में एक पंथ दो काज ॥ २२५६ ॥

कर्मयोग में उलझनें दिखें हजार हजार।
पर इसकी चिन्ता नहीं भीतर शान्ति अपार ॥२२५७॥
बाहर ही हैं उलझनें भीतर है मन शान्त।
परा वृत्ति मन की यही अटल अचल अभ्रान्त ॥२२५८॥
है सुख दुख की वेदना परावृत्ति-अनुसार।
परा वृत्ति ही पासके सत्येश्वर का द्वार ॥ २२५९ ॥
परा वृत्ति उन्मुख रहे सदा ध्येय की ओर।
अपरा नाचे सब जगह खूब मचाये शोर ॥ २२६० ॥
पनिहारी बातें करें खूब मचायें शोर।
पर रहता है हर समय मन गगरी की ओर ॥२२६१॥
कर्मयोगधारी करे दुनिया के सब काम।
ऊपर ऊपर कालिमा भीतर तेजोधाम ॥ २२६२ ॥
क्रोध मान छल लोभ के गहरे नहीं विकार।
ऊपर रँग पोता गया जनहित के अनुसार ॥ २२६३ ॥
जनहित उसका धर्म है जनहित उसका काम।
जनहित उसका अर्थ है जनहित ही शिवधाम ॥२२६४॥
करता है कर्तव्य का निर्णय हित अनुसार।
बहुजन हित जिस ओर हो उसी ओर व्यवहार ॥२२६५॥
सार्वत्रिक पर डालकर सार्वकालिकी दृष्टि।
योगी करे विवेक से बहुजन हित की सृष्टि ॥ २२६६ ॥
भीतर ही भीतर करे आत्मौपम्य विचार।
पहुँचे निर्णय के लिये सत्येश्वर के द्वार ॥ २२६७ ॥
जगहित की तल्लीनता उसका सच्चा स्वार्थ।
उसके मन में एक है स्वार्थ और परमार्थ ॥ २२६८ ॥
कर्मयोग की नीति है यहीं बुलाना स्वर्ग।

घर घर में जन्नत बने घट घट में अपवर्ग ॥ २२६९ ॥
सब का जीवन पूर्ण हो परम शान्ति का धाम ।
चारों ही जीवार्थ हों धर्म अर्थ शिव काम ॥ २२७० ॥

गीत–९१

जगत हो परम शान्ति का धाम ।
चारों ही जीवार्थ यहां हो धर्म अर्थ शिव काम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७१ ॥
बनें कुटुम्बी रहें प्रेमसे पालें मानव धर्म
हिंसा चोरी झूठ छोड़दें करें नहीं दुष्कर्म ॥
जीवन हो निष्पाप सभी का निशदिन आठों याम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७२ ॥
मुफ्तखोर जन रहे न कोई कार्य रहे अनिवार्य ।
जैसी जग की आवश्यकता वैसा जग का कार्य ॥
त्यागी जन भी काम करें तब नित्य सुबह से शाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७३ ॥
रहें इन्द्रियाँ तुष्ट सभी की सब के मन हो प्यार ।
मुख मण्डल पर हो प्रसन्नता वचन वचन रसधार ॥
जगह जगह हो आदर सब का घर घर में हो नाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७४ ॥
सुख दुख की पर्वाह नहीं हो जीवन हो अलमस्त ।
सत्येश्वर का ध्यान सदा हो चिन्ताएँ हो ध्वस्त ।
धर्म अर्थ से काम मोक्ष से जीवन बने ललाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७५ ॥

दोहा

कर्मयोग धारण करो सत्येश्वर सन्देश ।
रंग रहे रस भी रहे पर न पाप हो लेश ॥ २२७६ ॥

जैसे निर्मल व्योम में रहते हैं रस रंग।
तैसे जीवन में रहें भोग धर्म के संग॥ २२७७॥

गीत ९२

भरले जीवन में सब रंग।
एक रंग से चित्र न बनता विकसे न पाते अंग।
भरले जीवन में सब रंग॥ २२७८॥
रंग रहें तेरे जीवन में।
रस हों तेरे तन में मन में॥
काम कलाएँ करें नृत्य सब धर्म मोक्ष के संग।
भरले जीवन में सब रंग॥ २२७९॥
क्यों मन में नीरसता लाना।
दुनिया क्यों मनहूस बनाना॥
यह जीवन आनन्दकन्द हो हरदम रहे उमंग।
भरले जीवन में सब रंग॥ २२८०॥

दोहा

जीवन में सब रंग हों रस रस का हो ध्यान।
मरते तक उत्साह हो मन हो सदा जवान॥ २२८१॥

गीत ९३

तेरी अटल जवानी। योगी, तेरी अटल जवानी।
उतर न पायेगा जीवन भर तेरे मन का पानी॥
योगी तेरी अटल जवानी॥ २२८२॥
तन चाहे बूढ़ा होजाये।
चलने में मन्थरता आये॥
पर मन जग के रंगमंच पर करे न आनाकानी।
योगी तेरी अटल जवानी॥ २२८३॥
आती नहीं निराशा मन में।
है उमंग तेरे जीवन में॥

घर घर में जन्नत बने घट घट में अपवर्ग ॥ २२६९ ॥
सब का जीवन पूर्ण हो परम शान्ति का धाम ।
चारों ही जीवार्थ हों धर्म अर्थ शिव काम ॥ २२७० ॥

गीत-९१

जगत हो परम शान्ति का धाम ।
चारों ही जीवार्थ यहां हो धर्म अर्थ शिव काम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७१ ॥
बनें कुटुम्बी रहें प्रेमसे पालें मानव धर्म
हिंसा चोरी झूठ छोड़दें करें नहीं दुष्कर्म ॥
जीवन हो निष्पाप सभी का निशदिन आठों याम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७२ ॥
मुफ्तखोर जन रहे न कोई कार्य रहे अनिवार्य ।
जैसी जग की आवश्यकता वैसा जग का कार्य ॥
त्यागी जन भी काम करें तब नित्य सुबह से शाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७३ ॥
रहें इन्द्रियाँ तुष्ट सभी की सब के मन हो प्यार ।
मुख मण्डल पर हो प्रसन्नता वचन वचन रसधार ॥
जगह जगह हो आदर सब का घर घर मे हो नाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७४ ॥
सुख दुख की पर्वाह नहीं हो जीवन हो अलमस्त ।
सत्येश्वर का ध्यान सदा हो चिन्ताएँ हो ध्वस्त ।
धर्म अर्थ से काम मोक्ष से जीवन बने ललाम ।
जगत हो परम शान्ति का धाम ॥ २२७५ ॥

दोहा

कर्मयोग धारण करो सत्येश्वर सन्देश ।
रंग रहे रस भी रहे पर न पाप हो लेश ॥ २२७६ ॥

जैसे निर्मल व्योम में रहते हैं रस रंग ।
तैसे जीवन में रहें भोग धर्म के संग ॥ २२७७ ॥

गीत ९२

भरले जीवन में सब रंग ।
एक रंग से चित्र न बनता विकम न पावे अंग ।
भरले जीवन में सब रंग ॥ २२७८ ॥
रंग रहें तेरे जीवन में ।
रस हों तेरे तन में मन में ॥
काम कलाएँ करें नृत्य सब धर्म मोक्ष के संग ।
भरले जीवन में सब रंग ॥ २२७९ ॥
क्यों मन में नीरसता लाना ।
दुनिया क्यों मनहूस बनाना ॥
यह जीवन आनन्दकन्द हो हरदम रहे उमंग ।
भरले जीवन में सब रंग ॥ २२८० ॥

दोहा

जीवन में सब रंग हों रस रस का हो ध्यान ।
मरते तक उत्साह हो मन हो सदा जवान ॥ २२८१ ॥

गीत ९३

तेरी अटल जवानी । योगी, तेरी अटल जवानी ।
उतर न पायेगा जीवन भर तेरे मन का पानी ॥
योगी तेरी अटल जवानी ॥ २२८२ ॥
तन चाहे बूढ़ा होजाये ।
चलने में मन्थरता आये ॥
पर मन जग के रंगमंच पर करे न आनाकानी ।
योगी तेरी अटल जवानी ॥ २२८३ ॥
आती नहीं निराशा मन में ।
है उमंग तेरे जीवन में ॥

हार हार कर हार न खाता तेरी यही निशानी।
योगी तेरी अटल जवानी ॥ २२८४ ॥
बच्चों मे लीलाएँ लाकर।
बूढ़ों से अनुभव रस पाकर॥
उछले सदा जवानी तेरी चले चाल मस्तानी।
योगी तेरी अटल जवानी ॥ २२८५ ॥

दोहा

नग्न है पूजक दम्भ का भजता झूठे कष्ट।
फँसता मायाचार में हो विवेक से भ्रष्ट ॥ २२८६ ॥
योगी तेरे योग में तनिक न मायाचार।
कारण कार्य विवेक है जनहित के अनुसार ॥ २२८७ ॥

गीत—९४

योगी तेरा अद्भुत योग।
समझ न पाते हैं दुनिया के भोले भाले लोग।
योगी तेरा अद्भुत योग ॥ २२८८ ॥
ढोंग नहीं तेरे जीवन में।
भस्म लपेटा नहीं वदन में॥
है न मुफ्तखोरी जीवन में है न रूढ़िका रोग।
योगी तेरा अद्भुत योग ॥ २२८९ ॥
ढोंग न करता है विराग का।
मनमें मद है नहीं त्याग का॥
व्यर्थ कष्ट तू मोल न लेता करता है सद्भोग।
योगी तेरा अद्भुत योग ॥ २२९० ॥

दोहा

योगी तेरे योग में भरा हुआ है ज्ञान।
है विवेक की प्रेरणा तू है मनु सन्तान ॥ २२९१ ॥

गीत—९५

योगी तू मनु की सन्तान।
स्वयं प्रेरणा से रखता है कर्तव्यों का ध्यान।
योगी तू मनु की सन्तान ॥ २२९२ ॥
जब जब पशु हांके जाते हैं।
तब तब कुछ कर दिखलाते हैं ॥
कर्तव्यों की स्वयं प्रेरणा मानव की पहिचान।
योगी तू मनु की सन्तान ॥ २२९३ ॥
दंड न तुझको है डरवाता।
दुःस्वार्थों में मोह न लाता ॥
रूढ़ि बुरे संस्कार आदि का करता है अवसान।
योगी तू मनु की सन्तान ॥ २२९४ ॥
तुझमें कोई नहीं टेक है।
तेरा तो प्रेरक विवेक है ॥
सत्येश्वर से मिला हुआ है तुझको यह वरदान।
योगी तू मनु की सन्तान ॥ २२९५ ॥

दोहा

योगी मनु सन्तान तू नर नारी अवतार।
दोनों के सद्‌गुण मिलें मिले समन्वयधार ॥ २२९६ ॥

गीत—९६

योगी उभयलिंग अवतारी।
किसी अंश में नर बनता है किसी अंश में नारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २२९७ ॥
फिरती है नरत्व के मारे विपदा मारी मारी।
पापों की सेना सतीत्व से कदम कदम पर हारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २२९८ ॥
तेरे पौरुष से कम्पित है पापी दुनिया सारी।

तेरी वत्सलता से तुझको दुखिया दुनिया प्यारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २२९९ ॥
सत्य अहिंसा राजा रानी तू उनका दरबारी।
नर नारी के दिव्यगुणों का चतुर समन्वयकारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २३०० ॥

दोहा

उभयलिंग अवतार ले करता जग के काम।
जग में काम भरा पड़ा तुझको क्या विश्राम ॥२३०१॥

गीत-९७

योगी तुझको क्या विश्राम।
सत्येश्वर ने सौंपदिया है जीवन भर का काम।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २३०२ ॥
जब तक दुनिया रहे अधूरी।
तब तक राह न तेरी पूरी ॥
चलना है निशदिन चलना है तुझको आठों याम।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २३०३ ॥
गली गली में भटक भटक कर।
द्वार द्वार पर अटक अटक कर ॥
पैगम्बर पैगाम सुनादे नाम हो कि बदनाम।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २३०४ ॥
निशदिन जगके दुख में रोना।
कैसे मिले चैन से सोना।
जब तक यह संसार न बनता सत्येश्वर का धाम।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २३०५ ॥

दोहा

योगी क्या विश्राम ले सत्येश्वर का दास।
निशदिन करता चाकरी रहे दूर या पास ॥ २३०६ ॥

गीत ९८

योगी सत्येश्वर का चाकर ।
मालिक को खुश करले योगी उसका हुक्म बजाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०७ ॥
मनमें बैठा मालिक तेरा ।
अलग नहीं है उसका डेरा ॥
अब तू इतना कहा रक्खेगा मनका पाप छिपाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०८ ॥
सत्येश्वर का है जग सारा ।
भूलगया जो पथ बेचारा ॥
सत्यभक्त बन राह बतादे करुणा मनमें लाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०९ ॥
दुनिया को सत्पथ दिखलादे ।
जग की बिगड़ी बात बनादे ॥
एक नया संसार बनादे अपने प्राण लगाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३१० ॥

दोहा

सत्येश्वर की चाकरी योगी तेरा काम ।
कर तू ऐसी चाकरी जग हो मानवधाम ॥ २३११ ॥
बसे यहां हैवान है बसे यहां शैतान ।
यह दुनिया कर दे नई बसजाये इन्सान ॥ २३१२ ॥

गीत ९९

योगी दुनिया नई बनाना ।
दुख द्वंद से भरा हुआ यह जग होगया पुराना ।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१३ ॥
बहुत यहां हैवान भरे हैं ।
बहुत यहां शैतान भरे हैं ।

तेरी वत्सलता से तुझको दुखिया दुनिया प्यारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २१९९ ॥

सत्य अहिंसा राजा रानी तू उनका दरबारी ।
नर नारी के दिव्यगुणों का चतुर समन्वयकारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २३०० ॥

दोहा

उभयलिंग अवतार ले करता जग के काम ।
जग में काम भरा पड़ा तुझको क्या विश्राम ॥२२०१॥

गीत–९७

योगी तुझको क्या विश्राम ।
सत्येश्वर ने सौंपदिया है जीवन भर का काम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०२ ॥
जब तक दुनिया रहे अधूरी ।
तब तक राह न तेरी पूरी ॥
चलना है निशदिन चलना है तुझको आठों याम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०३ ॥
गली गली में भटक भटक कर ।
द्वार द्वार पर अटक अटक कर ॥
पैगम्बर पैगाम सुनादे नाम हो कि बदनाम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०४ ॥
निशदिन जगके दुख में रोना ।
कैसे मिले चैन से सोना ।
जब तक यह संसार न बनता सत्येश्वर का धाम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०५ ॥

दोहा

योगी क्या विश्राम ले सत्येश्वर का दास ।
निशदिन करता चाकरी रहे दूर या पास ॥ २२०६ ॥

गीत ९८

योगी सत्येश्वर का चाकर ।
मालिक को खुश करले योगी उसका हुक्म बजाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०७ ॥
मनमें बैठा मालिक तेरा ।
अलग नहीं है उसका डेरा ॥
अब तू बता कहां रक्खेगा मनका पाप छिपाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०८ ॥
सत्येश्वर का है जग सारा ।
भूलगया जो पथ बेचारा ॥
सत्यभक्त बन राह बतादे करुणा मनमें लाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३०९ ॥
दुनिया को सत्पथ दिखलादे ।
जग की बिगडी बात बनादे ॥
एक नया संसार बनादे अपने प्राण लगाकर ।
योगी सत्येश्वर का चाकर ॥ २३१० ॥

दोहा

सत्येश्वर की चाकरी योगी तेरा काम ।
कर तू ऐसी चाकरी जग हो मानवधाम ॥ २३११ ॥
बसे यहां हैवान है बसे यहां शैतान ।
यह दुनिया कर दे नई बसजाये इन्सान ॥ २३१२ ॥

गीत ९९

योगी दुनिया नई बनाना ।
दुःख दर्द से भरा हुआ यह जग होगया पुराना ।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१३ ॥
बहुत यहां हैवान भरे हैं ।
बहुत यहां शैतान भरे हैं ।

तेरी वत्सलता से तुझको दुखिया दुनिया प्यारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २१९९ ॥
सत्य अहिंसा राजा रानी तू उनका दरबारी ।
नर नारी के दिव्यगुणों का चतुर समन्वयकारी ॥
योगी उभयलिंग अवतारी ॥ २२०० ॥

दोहा

उभयलिंग अवतार ले करता जग के काम ।
जग में काम भरा पड़ा तुझको क्या विश्राम ॥२२०१॥

गीत–९७

योगी तुझको क्या विश्राम ।
सत्येश्वर ने सौंपदिया है जीवन भर का काम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०२ ॥
जब तक दुनिया रहे अधूरी ।
तब तक राह न तेरी पूरी ॥
चलना है निशदिन चलना है तुझको आठों याम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०३ ॥
गली गली में भटक भटक कर ।
द्वार द्वार पर अटक अटक कर ॥
पैगम्बर पैगाम सुनादे नाम हो कि बदनाम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०४ ॥
निशदिन जगके दुख में रोना ।
कैसे मिले चैन से सोना ।
जब तक यह संसार न बनता सत्येश्वर का धाम ।
योगी तुझको क्या विश्राम ॥ २२०५ ॥

दोहा

योगी क्या विश्राम ले सत्येश्वर का दास ।
निशदिन करता चाकरी रहे दूर या पास ॥ २२०६ ॥

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२२ ॥

सेवा में ईमान न खोना ।

सत्येश्वर का ध्यान न खोना ॥

मिले सफलता या असफलता फिर क्या रहा विचार

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२३ ॥

कर्मयोग योगों का नायक ।

सारी दुनिया को सुखदायक ॥

कर्मयोगधारी बन करले सारे जग से प्यार ।

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२४ ॥

दुनिया तेरी बात न माने ।

पर तू चिन्ता कर न सयाने ॥

कौन रोक सकता है तेरे जीवन का उद्धार ।

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२५ ॥

'स्वर्ग मुक्ति आये जीवन में'

अटल ध्येय यह रखले मनमें ॥

सारा जगत कर्मयोगी हो बने नया संसार ।

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२६ ॥

सत्येश्वर सन्देश सुनादे ।

अपने जीवन में दिखलादे ॥

सत्यभक्ति से सत्यभक्त बन तेरा बेड़ा पार ।

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२७ ॥

हरिगीतिका

सत्साहसी बन शक्ति ले प्रभु भक्ति ले सज्ज्ञान ले ।
सत्येश का, माता अहिंसा का निरंतर ध्यान ले ॥
बन कर्ममय बन ज्ञानमय सत्येश का वरदान ले ।
सारे जगत का एक हित है तत्व यह पहिचान ले ।२३२८।
मानव सभी हों कर्मयोगी सत्य का विस्तार हो ।

हैवानों में शैतानों में मानवता है लाना।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१४ ॥
स्वर्ग सरीखे सब साधन हैं।
लेकिन नरक सरीखे मन हैं॥
तन मन साधन बिछुड़ गये हैं सब का मेल मिलाना।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१५ ॥
धर्म और विज्ञान झगड़ते।
बुद्धि हृदय आपस में लड़ते।
इनका सत्य समन्वय करके सारे द्वन्द मिटाना।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१६ ॥
स्वर्ग लटकता जग से ऊपर।
उसे खींच लाना है भूपर।
युग युग से वह लटक रहा है अब कबतक लटकाना।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१७ ॥
दुनिया एक कुटुम्ब बनाना।
स्वर्ग मोक्ष जन्नत ले आना॥
सत्येश्वर का हुक्म बजाकर सत्यभक्त बनजाना।
योगी दुनिया नई बनाना ॥ २३१८ ॥

दोहा

सत्येश्वर के हुक्म पर कर जिन्दगी निसार।
थोड़े साधन देखकर हिम्मत कभी न हार ॥ २३१९ ॥
क्यों तू हिम्मत हारता तेरा क्या नुकसान।
सत्यभक्त तू बनगया मिला तुझे वरदान ॥ २३२० ॥
सदा खुला तेरे लिये सत्येश्वर का द्वार।
भले अकेला ही रहे हिम्मत कभी न हार ॥ २३२१ ॥

गीत–१००

योगी हिम्मत कभी न हार।
तेरे लिये खुला है निशदिन सत्येश्वर का द्वार।

योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२२ ॥

सेवा में ईमान न खोना ।
सत्येश्वर का ध्यान न खोना ॥
मिले सफलता या असफलता फिर क्या रहा विचार
योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२३ ॥

कर्मयोग योगों का नायक ।
सारी दुनिया को सुखदायक ॥
कर्मयोगधारी बन करले सारे जग से प्यार ।
योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२४ ॥

दुनिया तेरी बात न माने ।
पर तू चिन्ता कर न सयाने ॥
कौन रोक सकता है तेरे जीवन का उद्धार ।
योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२५ ॥

स्वर्ग मुक्ति आयें जीवन में
अटल ध्येय यह रखले मनमें ॥
सारा जगत कर्मयोगी हो बने नया संसार ।
योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२६ ॥

सत्येश्वर सन्देश सुनादे ।
अपने जीवन में दिखलादे ॥
सत्यभक्ति से सत्यभक्त बन तेरा बेड़ा पार ।
योगी हिम्मत कभी न हार ॥ २३२७ ॥

हरिगीतिका

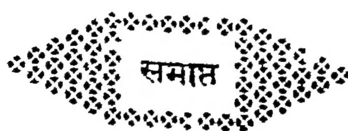
उत्साहसी बन शक्ति ले प्रभु भक्ति ले सज्ज्ञान ले ।
सत्येश का, माता अहिंसा का निरंतर ध्यान ले ॥
बन कर्ममय बन ज्ञानमय सत्येश का वरदान ले ।
सारे जगत का एक हित है तत्व यह पहिचान ले ।२३२८।
मानव सभी हों कर्मयोगी सत्य का विस्तार हो ।

सद्धर्ममय विज्ञान हो सत्प्रेममय व्यवहार हो ॥
धनधन्य हो भरपूर जग में स्वर्ग का अवतार हो ।
सत्येश की गीता सुगीता हो नया संसार हो ॥२३२९॥

उपसंहार

गान–१०१

मैंने तेरी गीता गाई ।
टूटी फूटी भाषा में भर जग के कानों तक पहुँचाई ।
मैंने तेरी गीता गाई ॥ २३३० ॥
तेरे द्वार लगाया डेरा ।
जीवन सफल हुआ सब मेरा ॥
तेरे चरणों की रज लेकर अंग अंग में भस्म रमाई ।
मैंने तेरी गीता गाई ॥ २३३१ ॥
अश्रु बहाये चरणों पर जब ।
सत्यामृत की धार बही तब ॥
अपने छोटे से चम्मच से प्यासे जग की प्यास बुझाई ।
मैंने तेरी गीता गाई ॥ २३३२ ॥
अल्प शक्तिधारी मैं प्राणी ।
बच्चे के समान है वाणी ॥
गागर में सागर भरने की पर मैंने हिम्मत दिखलाई ।
मैंने तेरी गीता गाई ॥ २३३३ ॥
तेरी करुणा से जो पाया ।
वह इस अंजलि में ले आया ॥
गंगा से गंगाजल लेकर गंगा को जलधार चढ़ाई ।
मैंने तेरी गीता गाई ॥ २३३४ ॥



सत्यभक्त साहित्य

राजनैतिक सामाजिक धार्मिक कौटुम्बिक आध्यात्मिक साहित्यिक आदि सभी समस्याओं को सुलझानेवाला, कविता नाटक संवाद कहानी उपन्यास लेख चुटकिले आदि सभी शैलियों से भरा हुआ, स्वामी सत्यभक्त जी के जीवनभर के अनुभवो और असाधारण तर्कों दृष्टान्तों से परिपूर्ण महान साहित्य, एक बार अवश्य पढिये।

सत्यामृत [मानवधर्मशास्त्र] अर्थात् इस युग का वेद

१	,, ,, दृष्टिकांड	१॥
२	,, ,, आचार कांड	२
३	,, ,, व्यवहार कांड	४
४	नयासंसार [भविष्य संसार का भ्रमणवृत्तान्त]	१।
५	गागर में सागर (मार्मिक चुटकिले)	॥।
६	,, बिंदूतसिंधू ,, [मराठी में]	॥।
७	नागयज्ञ [ऐतिहासिक नाटक]	।।
८	सत्यसंगीत [प्रार्थना और भावपूर्ण कविताएं]	॥।
९	आत्मकथा-स्वामीजीका उन्हींके शब्दोंमें जीवन	।।
१०	सुलझी गुत्थियाँ [महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर]	।=
११	सूरजप्रश्न [,,]	॥।=
१२	चतुर महावीर (बड़ी बड़ी कहानियां)	१
१३	मेरी विकासकथा (स्वामीजीकी सत्यलोक यात्रा)	॥।
१४	मन्दिर का चबूतरा (तर्कपूर्ण उपन्यास)	॥।
१५	सुख की खोज [बड़ी बड़ी कहानियां]	१
१६	अग्निपरीक्षा [वैज्ञानिक कहानियाँ]	॥।
१७	जीवन सूत्र (चौबीस जीवनसूत्रोंका भाष्य)	।=
	जैनधर्म मीमांसा (जैनधर्मका कायाकल्प)	
१८	,, पहिला खंड (दर्शन और इतिहास)	
१९	,, दूसरा खंड [ज्ञान मीमांसा]	
२०	,, तीसरा खंड [चरित्र मीमांसा]	
२१	बुद्धहृदय [म बुद्ध की मर्मस्पर्शी डायरी]	

२२ ईसाईधर्म–म ईसाका जीवनचरित्र और उपदेश |–

२३ कृष्णगीता [हिन्दी के एक हजार पद्य गीत] १

२४ म राम (संवाद और कविताएं) ।

२५ नई दुनिया का नया समाज (सत्यसमाज और कहानियां) |=

२६ विवाहपद्धति (हिन्दी में ही समभावी पद्धति सुन्दर गीत) =

२७ क्यों सलाम करूं–प्रतिष्ठाके पूँजीवादपर कहानी ≡

२८ शीलवती (कहानीमें वेश्या सुधार की योजना और गीत] =॥

२९ लिपि समस्या (लिपि और तार में सुधार युक्तिपूर्ण मौलिक विवेचन नमूनेसहित) ।

३० न्याय प्रदीप (हिंदी में मौलिक न्यायग्रंथ १

३१ हिंदू मुसलिम मेल [मेल का निष्पक्ष संदेश] ≡

३२ हिन्दू भाइयों से-हिन्दुओंका जरूरी कर्तव्य =॥

३३ मुसलिम भाइयों से–मुसलमानोंका जरूरी कर्तव्य ≡

३४ हिन्दू मुसलिम इत्तहाद (-उर्दू में ≡

३५ भावना गीत =॥

३६ अनमोलपत्र महत्वपूर्ण पत्रांश –

३७ निरतिवाद (पूंजीवाद समाजवादके बीचका मार्ग दूसरा संशोधित संस्करण ॥।

३८ कुरानकी झांकी। कुरान के महत्वपूर्ण उपदेश ।

३९ सर्वधर्म समभाव =

४० सत्यसमाज और प्रार्थना –

४१ वन्दना– प्रार्थना गीतोंका संग्रह ॥।

४२ सत्येश्वर गीता पद्यगीतों में मानव धर्म शास्त्र } २॥

४३ बोधगीत ।

सूचना– ३८, ३९, ४० नम्बर की पुस्तकें समाप्त हैं। निम्नलिखित पुस्तकें छपरही हैं या छपनेवाली हैं।

४४ मानवभाषा–विश्वके लिये एक अत्यन्त सरल भाषा

४५ उलहना–त्रुटिदर्शक गीतोंका संग्रह]

४६ विचारों की झांकी–महत्वपूर्ण लेखोंका संग्रह]

सत्याश्रम वर्धा (मध्यप्रान्त)

ENGLISH SECTION